उत्क्रान्तचेता धर्मनायक आचार्य तुलसी

शासनश्री मुनि राकेश कुमार

उत्क्रान्तचेता धर्मनायक
आचार्य तुलसी

शासनश्री
मुनि राकेशकुमार

संपादक
मुनि दीपकुमार

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© **जैन विश्व भारती, लाडनूं**

प्रथम संस्करण : सितम्बर २०१४
द्वितीय संस्करण : अक्टूबर २०१४

मूल्य : १३०/- (एक सौ तीस रुपये मात्र)

मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस, नवीन शहादरा, नई दिल्ली

समर्पण

किसी भी समाज और संघ का भविष्य नेतृत्व पर निर्भर करता है। जहां नेता सक्षम और समयज्ञ होते हैं, उस संगठन का भविष्य सुखद और उज्ज्वल होता है। तेरापंथ धर्मसंघ नेतृत्व की दृष्टि से सौभाग्यशाली रहा है। उसे जिस समय जैसे नेतृत्व की अपेक्षा थी उसे वैसा ही मिलता रहा है। २०वीं शताब्दी का समय संक्रमण काल का था। शिक्षा की व्यापक प्रगति हुई। पुरानी परम्पराओं के स्थान पर नई परम्पराएं स्थापित हुई। इस स्थिति में धर्माचार्यों को भी युग की धारा से सामंजस्य बिठाना आवश्यक था। उस समय आचार्यश्री तुलसी जैसे समर्थ और दूरदर्शी आचार्य प्राप्त हुए। जिनका आचार्य काल ऐतिहासिक और चिरस्मरणीय रहा है। उन्होंने धर्मसंघ में श्रुत साधना की सुरसरिता प्रवाहित की। साधु-साध्वी संघ को सब दृष्टियों से योग्य और समर्थ बनाया। नेतृत्व के लिए समय की गति को पहचानना आवश्यक हैं। कहा है—

वक्त को जिसने न समझा, उसे मिटना पड़ा है।
बच गया तलवार से तो, फूल से कटना पड़ा है।।

आचार्यश्री तुलसी ने सामाजिक अंधविश्वासों और कुरूढ़ियों को मिटाने का भागीरथ प्रयत्न किया। नारी जागृति और साध्वी शिक्षा का जो अद्‌भुत कार्य किया, वह इतिहास के पृष्टों का अमर दस्तावेज है। आचार्यश्री ने प्रवचन शैली और तत्त्व निरूपण शैली का बहुत परिष्कार किया। जिससे बुद्धिजीवी लोग भी तर्क-संगत युगानुकूल धार्मिक विवेचन से बहुत प्रभावित हुए। जो धर्म के नाम से नाक भौं सिकोड़ते थे वे भी उनके धर्म और विज्ञान के समन्वय प्रधान विचारों से सहमत और श्रद्धानत हो गए। आचार्यश्री तुलसी संप्रदाय के समर्थक थे, पर संप्रदायवाद के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में धर्म मुख्य था, संप्रदाय गौण था। वे धर्म को मशाल की रोशनी मानते। संप्रदाय को उसे थामने

वाला डंडा। उनके मानस में नए-पुराने का आग्रह नहीं था। ''यत् सारभूतं तदुपासनीयम्'' के उपासक थे।

आचार्यश्री तुलसी समन्वय सेतु थे। उन्होंने सभी धर्म-संप्रदायों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। वे प्रबल जिज्ञासु और गुणग्राहक थे। उनका खंडनात्मक नीति में विश्वास नहीं था। इसलिए विभिन्न धर्माचार्यों, महन्तों और मौलवी उनका दिल से आदर करते थे और आज भी वे समय समय पर स्मरण करते हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने धर्मसंघ की अंतरंग और बहिरंग व्यवस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन और परिष्कार किए। जिससे संघ में एक नई तरुणाई और अरुणाई का सजीव दर्शन होता है। ''उत्क्रान्तचेता धर्मनायक : आचार्य तुलसी'' इस पुस्तक में आलेखित निबंधों में आचार्यश्री के अवदानों और योगदानों पर प्रकाश डाला गया है।

मैं महातपस्वी, वात्सल्य वारिधि आचार्यश्री महाश्रमणजी का आभारी हूं उनकी कृपा से हर कार्य सफल हो जाता है।

मुनि हर्षलालजी और मुनि मिश्रीमल्लजी का सहयोग स्मृति पटल पर अंकित हैं जो कभी विस्मृति का विषय नहीं है।

पुस्तक के लिए मुनि कुमारश्रमणजी का बड़ा आत्मीय सहयोग रहा है।

मुनि सुधाकरजी और मुनि दीपकुमारजी मेरे हर कार्य में सहयोगी हैं।

पुस्तक के निबंध अलग-अलग प्रसंगों पर लिखे गए हैं। इन बिखरे हुए निबंधों को एक सूत्र में पिरोकर मुनि दीपकुमारजी ने पुस्तक का रूप दिया है। मुनि दीपकुमारजी मेरी सेवा में अहर्निश जागरूक हैं। इस पुस्तक का संपादन कर मेरा काम हल्का कर दिया है।

यह आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी समारोह का वर्ष है। वे मेरे जीवन निर्माता हैं। इस पुनीत अवसर पर उनके जीवन की एक संक्षिप्त झलक देने वाली इस पुस्तिका का प्रकाशन हो रहा है, यह मेरे लिए संतोष और प्रसन्नता का विषय है।

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष — **मुनि राकेशकुमार**
दिल्ली

सम्पादकीय

युग आये, चले गए। उनके प्रखर प्रवाह में न जाने कितने लोग बह गए। क्या कोई गणना कर सकता है? यह युग का चक्कर आगे भी चलता रहेगा। पर, अंगुलियों पर गिने जाने योग्य कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी समय-समय पर यह रत्नगर्भा वसुन्धरा पैदा करती रहती है, जो युग के साथ बहते नहीं, युग को अपने बहाव के साथ ले चलते हैं। ऐसे लोग सच्चे जीवन के धनी होते हैं। उनमें जीवन-चैतन्य होता है। वे स्वयं आगे बढ़ते हैं, जन-जन को बढ़ाये ले चलते हैं। उनका जीवन साधना की पगडंडी पर चलने वालों के लिए प्रेरणा सूत्र बन जाता है। प्रकाश स्तम्भ की तरह उन्हें जीवन पथ का निर्देशन देता रहता है। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही क्रांतिकारी महापुरुष थे।

आचार्यश्री तुलसी पारसमणि थे। उनके सान्निध्य से हजारों मनुष्यों का जीवन स्वर्णोपम बन गया। वे युगद्रष्टा धर्माचार्य थे, उन्होंने युग की समस्याओं को समझा और उनका समाधान प्रदान किया। देश में साम्प्रदायिकता और अंधविश्वास का विष फैलाने वाले धर्माचार्य बहुत हैं। पर धर्म का यथार्थ स्वरूप बताने वाले आचार्यश्री तुलसी जैसे धर्माचार्य कम हैं। उन्होंने धर्म के वैज्ञानिक और जीवनोपयोगी स्वरूप का मार्गदर्शन किया।

आचार्यश्री तुलसी ने पंजाब से लेकर कन्याकुमारी तक पदयात्रा की। देश में अणुव्रत-आंदोलन के द्वारा एकता और नैतिकता के आधार को मजबूत बनाया। अनेक गांवों के सामाजिक और पारिवारिक वैमनस्य मिटाए। उनके द्वारा प्रदत्त उद्घोष मानवता के लिए कल्याणकारी है। उन उद्घोषों में प्रमुख हैं—'संयमः खलु जीवनम्' संयम ही जीवन है, 'निज पर शासन, फिर अनुशासन', 'पहले इन्सान इन्सान, फिर हिन्दु या मुसलमान' आदि प्रमुख हैं। यदि देश के नागरिक इन उद्घोषों का अनुसरण करें तो समाज का कायाकल्प

हो सकता है, स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है। आचार्यश्री तुलसी के विचारों और कार्यक्रमों से मूर्धन्य विचारक प्रभावित थे।

आचार्यश्री तुलसी उत्क्रान्तचेता धर्मनायक थे। उनका शासनकाल विकास का पर्याय था। वे नित नए-नए स्वप्न देखते थे और तदनुरूप उन स्वप्नों को पूरा करते। उन्होंने कितना कुछ किया उसकी एक लंबी फेहरिस्त है। चाहे वे आगम सम्पादन का कार्य हो, अणुव्रत का प्रवर्तन हो, समण श्रेणी का प्रादुर्भाव हो, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान का आविष्कार हो, एक लंबी कतार है। आज आचार्यश्री तुलसी के अवदान वरदान बन रहे हैं।

आचार्यश्री तुलसी जंगम विश्वविद्यालय थे। बड़ी-बड़ी पदयात्राओं में भी उनके सान्निध्य में श्रुत के सागर का अवगाहन होता रहता था। आचार्यश्री ने अनेक विशिष्ट साधु-साध्वियों और कार्यकर्ताओं का निर्माण किया। उनमें मुनिश्री राकेशकुमारजी भी एक हैं। मुनिश्री को आचार्यप्रवर का निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ। इस पुस्तक में मुनिश्री के अनुभवों पर आधारित लिखे हुए निबंधों का संग्रह है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस बिखरी हुई सामग्री को पुस्तकाकार रूप देने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे मेरा भी ज्ञानवर्धन हुआ है। 'तुलसी जन्म शताब्दी' के इस पावन यज्ञ में इसके माध्यम से मुझे भी श्रद्धा संपृक्त आहुति देने का यह सुअवसर प्राप्त हुआ है।

मुनि दीपकुमार

अनुक्रम

१.	विकास के शिखर पुरुष	१
२.	धर्मक्रांति के पुरोधा	५
३.	युगप्रवर्तक धर्माचार्य	८
४.	चरैवेति-चरैवेति के मंत्रदाता	१२
५.	सहज योगी	१६
६.	भावात्मक एकता के मंत्रद्रष्टा	२१
७.	हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास	२५
८.	संस्कृत-विकास के विविध प्रयोग	३०
९.	मनोनुशासनम् : एक अध्ययन	३४
१०.	क्रांतिकारी अभियान	४१
११.	सरकारी मुद्रणालय में	४७
१२.	व्यापक प्रभाव	५०
१३.	अष्टगणी सम्पदा के धनी	५३
१४.	परम्परा-प्रगति के समन्वय सेतु	६०
१५.	निष्प्रकम्प व्यक्तित्व	६५
१६.	संघर्ष से उत्कर्ष	६७
१७.	चक्खूदयाणं के मूर्त्तरूप	७४
१८.	महार्घ रत्नों के अन्वेषक	७९
१९.	विलक्षण अवदान	८३
२०.	नेतृत्व कौशल	८७
२१.	जैन एकता के प्रबल पक्षधर	९१
२२.	भगवान महावीर की पच्चीसौंवी निर्वाण शताब्दी	१०३
२३.	संवत्सरी एकता के प्रयास	११०
२४.	मधुर मिलन के प्रसंग	११८
२५.	जैन एकता के विविध आयोजन	१२६
२६.	कर्नाटक विधानसभा में श्रद्धांजलि	१३१

विकास के शिखर पुरूष

''तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते''—तेज-सम्पन्न महापुरुषों का अंकन गणित-प्रयोगों के आधार पर नहीं होता। उनका तेजस्वी जीवन विश्व के सामान्य नियमों का अपवाद होता है। उनका अभ्युदय स्थिति-सापेक्ष नहीं होता। उनका गतिशील व्यक्तित्व बाहर की सीमाओं से मुक्त रहता है।

केवल २२ वर्ष की अवस्था, यौवन की उदय बेला में आचार्यपद का गुरुतर दायित्व, यह इतिहास के पृष्ठों की महान् आश्चर्यजनक घटना है। आचार्यश्री कालूगणी के स्वर्गवास के समय अनेक वृद्ध साधु विद्यमान थे; किन्तु उनके उत्तराधिकारी के रूप में नाम घोषित हुआ एक नौजवान साधु का, और वे थे हमारे परमाराध्य आचार्य श्री तुलसी।

गगन में चमकते हुये चांद और सितारे अपनी गति से अहर्निश बढ़ते रहते हैं। पवन की गतिशीलता किसी से छिपी हुई नहीं है। विभिन्न रूपों में बहती हुई जलधारा संसार के लिये वरदान है। निरलस प्रकृति के अणु-अणु में समाया हुआ गति और कर्म का संदेश संसार के महापुरुषों का जीवन-मंत्र होता है। गति जीवन है और स्थिति मृत्यु। इसी अन्तःप्रेरणा के साथ उनके चरण आगे से आगे बढ़ते जाते हैं। जब हम आचार्य श्री तुलसी के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं तो वह प्रवहमान निर्झर के रूप में हमारे सामने आता है। उनका लक्ष्य सदा विकासोन्मुख था। बड़ी से बड़ी बाधायें उन्हें रोक नहीं सकीं। ''बढ़े चलें हम रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा''—इस स्वरलहरी में उनकी आत्मा का संगीत मुखरित होता था। उनके पारिपार्श्विक वातावरण में अभिनव आलोक रश्मियां छाई हुई दिखाई देती थी। निराशा के कुहरे में दिग्मूढ़ बना मानव वहां सहज रूप से नया जीवन पाता था।

संघ के सर्वतोमुखी विकास के लिए आचार्य श्री तुलसी के उर्वर

मस्तिष्क से विभिन्न प्रयोगों का आविष्कार होता रहता था। उन्होंने समयानुकूल नये-नये कार्यक्रम दिये, प्रगति की नई-नई दिशाएं दीं। ''प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः''—इस परिभाषा के अनुसार साधना, शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में होने वाले अनेक प्रयोग बहुत प्रेरणादायक हैं। तेरापंथ की प्रगति के पीछे छिपी हुई आचार्यश्री की विभिन्न दृष्टियां इतिहास के पृष्ठों से ओझल नहीं हो सकती। सारे संघ में संस्कृत भाषा का विकास आज बहुत ही सुव्यवस्थित और सुदृढ़ रूप से देखा जाता है। जहां एक युग में इस सुर भारती का स्वर मंद-मंद-सा सुनाई दे रहा था, लोग मृत भाषा कहकर उसकी घोर उपेक्षा कर रहे थे, प्रगति के कोई नये आसार सामने नहीं थे, वहां तेरापंथ साधु समाज में उसका स्रोत अजस्र प्रवाहित होता दिखाई दिया। जिसके निकट परिचय से बड़े-बड़े विद्वानों का मानस भोज-युग की स्मृतियों में डूबने लगा। इसका श्रेय आचार्य श्री तुलसी द्वारा अपनाये गये नये-नये प्रयोगों और प्रणालियों को है। साधना की दिशा में होने वाली प्रेरणाओं में खाद्य-संयम, स्वाध्याय व ध्यान के प्रयोग विशेष महत्त्व रखते हैं। किसी भी प्रयोग का प्रारम्भ वे स्वयं से करते थे। उनका विश्वास था, अपने को अपवाद मानकर किया जाने वाला प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकता, किसी भी संख्या में आगे के शून्यों का महत्त्व पहले अंक के पीछे ही होता है।

सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् की उपासना का त्रिवेणी संगम आचार्य तुलसी के जीवन का एक विलक्षण पहलू था। वे जितने तत्त्वद्रष्टा थे, उससे अधिक एक साधक और कलाकार थे। उनके विचारों के अनुसार इन तीनों के समन्वय के बिना पूर्णता के दर्शन नहीं हो सकते। जीवन का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।

सामान्यतया साधना और कला में अन्तर समझा जाता है। पूर्व और पश्चिम की तरह दोनों का समन्वय सम्भव नहीं माना जाता। किन्तु; आचार्यश्री ने कला के लक्ष्य को बहुत ऊंचा प्रतिष्ठित कर उसे साधना में बाधक नहीं, प्रत्युत महान् साधक के रूप में स्वीकार किया था। उनका मस्तिष्क चिन्तन की उर्वरा-स्थली था, उनके हृदय में साधना की पवित्र गंगा बहती थी और उनके हाथ और पैर कला के विभिन्न रूपों की उपासना में निरन्तर संलग्न रहते थे।

संक्रमण काल में गुजरते हुए प्राचीनता और नवीनता का प्रश्न भी गुरुदेव के जीवन का एक विषय बन गया था। यद्यपि उन्होंने इसको महत्त्व नहीं दिया; किन्तु संघ विशेष का नेतृत्व करने के कारण लोगों की दृष्टि में वह महत्त्वपूर्ण था। इस सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—''सत्य के प्रकाश में नवीनता और प्राचीनता की रेखाएं बिलकुल गौण हैं।'' सत्य की व्यावहारिक अभिव्यक्तियां समय सापेक्ष होती हैं। उसकी अन्तरात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। परम्परायें बनती और मिटती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उनसे ऊंचा होता है। किन्तु; जीवन की शाश्वत रेखाएं कभी नहीं बदलतीं। उनको आधार मानकर ही व्यक्ति अपने मार्ग पर बढ़ सकता है। इस चिन्तन को वृक्ष की कल्पना के आधार पर गुरुदेव ने बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया—''जो वृक्ष अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहता है, संसार में अपनी सुन्दरता और उपयोगिता का विकास करना चाहता है, उसे मौसम के अनुसार सर्दी और गर्मी दोनों ही हवाओं को समान रूप से स्वीकार करना होगा। किन्तु; उसका मूल सुदृढ़ होना चाहिये। मूल के दुर्बल होने पर बाहर की हवाओं से भी कोई पोषण नहीं मिल सकता।''

प्रगति की धारा समर्थन और विरोध, इन दोनों तटों के बीच गुजरती है। प्रगतिशील व्यक्तित्व इन दोनों को अपना सहचारी सूत्र मानकर चलता है। संसार गतिशील है, वह प्रगति का अभिनन्दन किए बिना नहीं रह सकता। ज्यों-ज्यों पथिक के चरण आगे बढ़ते हैं, जनता उन पर स्वागत के फूल चढ़ाती है। किन्तु; साथ ही लक्ष्य की रेखाओं को सुस्पष्ट बनाने के लिये छोटे-छोटे विरोधों के प्रवाह भी विश्व के व्यापक नियम में बिलकुल स्वाभाविक माने गये हैं। आचार्य श्री तुलसी को जनता से अद्‌भुत सम्मान मिला तो साथ में विरोध और समालोचनायें भी मिली। उनका समतापरायण जीवन इन दोनों स्थितियों में काफी ऊंचा रहा था। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में सम और स्थिर रहना उनकी साधना का अंग था।

आचार्य श्री तुलसी की जीवन धारा विभिन्न रूपों में बहती हुई हमारे सामने आती थी। इससे किसी अपरिचित व्यक्ति को कभी-कभी विरोधाभास का अनुभव भी होता था। किन्तु; गहराई से पढ़ने पर वस्तुस्थिति का दर्शन अपने आप हो जाता। अध्यात्म की सुदृढ़ साधना के साथ-साथ शिक्षा,

साहित्य, संस्कृति के सम्बन्ध में भी उनकी अपनी अनूठी देन है। नैतिक आन्दोलन के व्यापक प्रसार के लिए जन सम्पर्क भी उनकी दैनिक चर्या का मुख्य अंग रहता था। इन विविधमुखी धाराओं को एकरस बनाने व इसमें सामंजस्य स्थापित करने का एकमात्र कारण उनका संतुलित व्यक्तित्व था।

तेरापंथ की आचार्य परम्परा बहुत यशस्वी रही है। आचार्य श्री तुलसी ने उसमें अनेकों महत्त्वपूर्ण कडियां जोड़ीं। आचार्यश्री के शासनकाल के प्रारंभिक दशकों में धर्म का क्षेत्र संक्रान्तियों से भरा हुआ था। एक ओर जहां विज्ञान, मनोविज्ञान व पाश्चात्य नीतिशास्त्र ने धर्म की दार्शनिक व नैतिक पूर्व मान्यताओं पर प्रभाव डाला, वहां दूसरी ओर धर्म के क्षेत्र में छाई हुई विकृत परिस्थितियों ने उसके तेज को धूमिल भी बना डाला था। धर्म के मौलिक आधारों को सुदृढ़ और व्यापक बनाने में गुरुदेव ने महान् तपस्या की, वहां उनसे सम्बन्धित विकृतियों पर उनका प्रहार भी बड़ा कठोर रहा। उनके स्वरों में होने वाले धर्म के विश्लेषण से नास्तिक भी प्रभावित हुये बिना नहीं रहे। आपने अनुशासित साधु समाज को देश के नैतिक-पुनरुत्थान में संलग्न कर धर्माचार्यों के सम्मुख एक अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया।

धर्म क्रांति के पुरोधा

विश्व पटल पर कतिपय ऐसे विशिष्ठ व्यक्तित्व अवतरित होते हैं, जिनके अनुपम अवदानों से पूरा मानव समाज उपकृत होता है। उनके व्यक्तित्व की सौरभ क्षेत्र और काल की सीमा से अतीत होती है। अपने पुरूषार्थ और विचार वैभव से वे समाज में अभिनव चेतना और जागृति का संचार करते हैं। उन महापुरूषों की परम्परा में आचार्य श्री तुलसी २० वीं शताब्दी के शिखर पुरूष थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनके पुरूषार्थ की लेखनी से इतिहास के पृष्ठों पर अनेक अमिट रेखाओं का निर्माण हुआ। एक धर्माचार्य के रूप में उन्होंने जो पवित्र और प्रेरक रेखाएं अंकित की वे युग-युग तक समाज का दिशा दर्शन करती रहेगी।

अणुव्रत प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी मानवता के मसीहा थे। उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से मानव धर्म के व्यवहारिक स्वरूप का प्रतिपादन किया। संप्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी उन्होंने स्वयं को संप्रदायवाद की संकीर्ण धारा में आबद्ध नहीं किया। ''पहले इन्सान-इन्सान, फिर हिन्दु या मुसलमान'' उनका यह प्रिय और प्रसिद्ध उद्घोष उनकी उदार दृष्टि का परिचायक हैं।

आचार्य श्री तुलसी का जीवन अनेकान्तवाद की प्रयोगशाला था। आज अनेक धर्मगुरूओं में विरोधी विचारों के प्रति घृणा और असहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है। पर आचार्य तुलसी का चिन्तन इसका सर्वथा अपवाद था। वे विरोधी विचारों के प्रति भी उदार और सहिष्णु थे। आचार्य श्री के सम्मुख अनेक बार विरोधी वातावरण और प्रसंग उपस्थित हुए। उस समय उनका मानसिक संतुलन सबके लिए प्रेरक था। मैंने स्वयं निकटता से इसका अनुभव किया। वैचारिक भिन्नता के कारण यदि कोई विरोध होता तो उसके सार्थक तत्व का वे

प्रसन्नता से स्वागत करते थे। विक्रम संवत् २००६ में आचार्य श्री का पावस प्रवास जयपुर था। वहां प्रखर विरोध का वातावरण उपस्थित हुआ। उसके मूल में साम्प्रदायिक आग्रह और ईर्ष्या की भावना थी। उस समय गुरूदेव ने अपने प्रवचन में उस परिस्थिति पर विचार प्रकट करते हुए निम्न संस्कृत श्लोक का उच्चारण किया

आक्रुष्टेन मतिमता, तत्वार्थान्वेषणे मतिः कार्या।
यदि सत्यं कः कोपः, स्यादनृतं किन्नु कोपेन।।

जिसका विरोध होता है, उसे यथार्थ का चिन्तन करना चाहिए। यदि विरोध सही हैं तो वह किसी पर क्रोध क्यों करे, यदि सही नहीं है तो भी क्रोध क्यों करें। उसके बाद मैंने विरोध के क्षण प्रस्तुत होने पर गुरूदेव के मुखारविन्द से इस श्लोक का उच्चारण बहुत बार सुना, इसमें उनकी यथार्थवादिता, सहिष्णुता और सारग्राहिता की दृष्टि परिलक्षित होती।

धर्म मशाल की रोशनी के समान है, संप्रदाय उसे थामने वाले दण्डे के समान है। धर्म फल के मधुर रस के समान है, संप्रदाय उसे धारण करने वाले छिलके और आवरण के समान है। धर्म के विकास मे संप्रदाय के महत्व को स्वीकारते हुए भी उनकी दृष्टि सदा आध्यात्मिक धर्म पर केन्द्रित रहती थी।

आचार्य श्री तुलसी धर्म को परमविज्ञान मानते थे। उन्होंने धर्म के सिद्धांतों की तर्क संगत और वैज्ञानिक व्याख्या पर विशेष बल दिया। धर्म के क्षेत्र में व्याप्त अंधविश्वास और रूढिवाद के विरूद्ध उन्होंने महान क्रान्ति की। ''विवेगे धम्ममाहिए'' यह सूत्र उन्हें बहुत प्रिय और अभीष्ट था। एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है-जो सत्य का साक्षात्कार करना चाहता हैं, उसे क्या, क्यों, कैसे, कब और कहां, हर संवाद में इस पांच प्रश्नों को सामने रखना चाहिये। गुरूदेव ने इस सूत्र को बहुत उपयोगी माना था।

आज धर्म उपासना-केन्द्रों में सीमित हो गया है तथा दैनिक जीवन से दूर हो रहा है। गुरूदेव ने अणुव्रत के अभियान से धर्म को दैनिक जीवन के साथ जोड़ने का श्लाघनीय प्रयास किया। शिक्षा, व्यापार राजनीति आदि समाज के सभी क्षेत्रों में सत्य, अहिंसा और संयम प्रधान धर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिए, उनका यह चिन्तन सबके लिए प्रेरणादायक है। उन्होंने आचरण और व्यवहार के

द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या और परिभाषा प्रस्तुत करने की दृष्टि दी। सिर्फ शेखी बघारने और दुहाई देने का उनके विचार से कोई महत्व नहीं था।

एक धर्माचार्य के रूप में गुरूदेव ने अपने जीवन में दोनों प्रकार की भूमिका का जागरूकता से निर्वाह किया। उन्होने धर्म को अन्धविश्वास, रूढिवाद और पूर्वाग्रह की कारा से मुक्त किया। दूसरी ओर उन्होंने भौतिकवाद की एकांगी धारा की ओर बहते जन-मानस को अध्यात्मवाद की ओर मोड़ा। मानव समाज की अध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना का जागरण उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। अध्यात्म विहीन प्रगति को उन्होंने उचित नहीं समझा। भारतीय संविधान में प्रयुक्त धर्म निरपेक्षता शब्द के स्थान पर उन्होंने सम्प्रदाय निरपेक्षता के प्रयोग का सुझाव दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू से इस विषय पर उनकी गम्भीर मन्त्रणा और चर्चा हुई थी। पंडित नेहरू गुरूदेव के आध्यात्मिक विचारों से बहुत प्रभावित हुए, आखिरी वर्षों में नेहरूजी के धर्म और अध्यात्म के प्रति चिन्तन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति समाज के प्रति कर्तव्य विमुख होता है, गुरूदेव ने अपने जीवन और दर्शन से इस भ्रांत धारणा का निराकरण किया। अध्यात्म और व्यवहार के सम्बन्धों पर उन्होंने स्पष्ट मार्ग दर्शन किया। जीवन के आन्तरिक और व्यवहारिक दोनों पक्षों में उन्होंने संतुलन स्थापित किया। आचार्य श्री तुलसी ने धर्म और जाति के नाम पर व्याप्त भेद भावों और विषमताओं के उन्मूलन हेतु क्रान्तिकारी उपक्रम किए। उनके प्रवचनों मे ंहर जाति और वर्ग के व्यक्ति सम्मिलित होते थे।

युगप्रवर्त्तक धर्माचार्य

मानवीय मूल्यों के उत्थान और विकास में सदैव संत पुरुषों का महान योगदान रहा है। उनकी वाणी में शस्त्र से भी अधिक बल और तेज होता है, जिसके प्रभाव से जन मन में नई शक्ति और प्रेरणा का संचार होता है। निराशा व दुर्बलता की बेड़ियाँ स्वतः टूट पड़ती हैं। संत किसी एक वर्ग और समाज के नहीं होते। उनका जीवन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का प्रतीक होता है। उनके विचारों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। विश्व के क्षितिज पर समय-समय पर अनेक संतों का अवतरण हुआ है। उसके पीछे उनकी साधना और तपस्या का विशिष्ट प्रभाव रहा है। युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी उसी संत-परम्परा के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे, जिनका जीवन मानवता के कल्याण के लिए सर्वात्मना समर्पित था। वे युगप्रवर्त्तक धर्माचार्य थे।

आचार्य श्री तुलसी एक प्रखर तत्त्व चिन्तक थे। उन्हें हम आधुनिक सुकरात कह सकते हैं। उनका जीवन सत्य की प्रयोगशाला था। उनका मानस साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह और घेराबंदी से सर्वथा मुक्त था। उन्हें साम्प्रदायिकता से ग्रसित रुढ़िवादी लोगों की ओर से विरोधों एवं चुनौतियों का विषपान करना पड़ा; किन्तु कांटे बिछाने वालों पर भी उन्होंने सद्भावना के फूलों की वर्षा की।

आचार्य श्री तुलसी का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था। एक धर्म सम्प्रदाय के आचार्य होते हुए भी उनका जीवन विविधआयामी था। देश-विदेश के प्रमुख जन नेता व प्रबुद्ध मनीषी उनके विचारों व कार्यक्रमों से प्रभावित थे। राष्ट्रपति भवन, संसद भवन व लालकिले जैसे महत्त्वपूर्ण स्थानों से अनेक बार उन्होंने अपना नैतिक संदेश प्रदान किया था। इसीतरह लगभग ८० हजार किलोमीटर की पद यात्रा कर छोटे-छोटे देहातों में भी पड़ाव किए एवं गरीबों, किसानों

और मजदूरों की टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रात्रि प्रवास किया। कहीं-कहीं घोर जंगल में सघन वृक्षों की छाया में पूरे दिन-रात का समय बिताया।

आचार्य श्री तुलसी समता योगी थे। हर परिस्थिति में शांत और संतुलित रहना उनका नैसर्गिक गुण था। राजमहल और झोंपड़ी के प्रवास में उनकी मानसिक प्रसन्नता एक-सी देखी जाती थी। उनका जीवन श्रीमद् भगवतगीता के इस श्लोक का मूर्तिमान उदाहरण थाः

''दुखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगत स्पृहः।
वीतराग भय क्रोधः, स्थितधी र्मुनि रुच्यते।।''

समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और विकृत रूढ़ियों को मिटाने के लिए आचार्य श्री ने भगीरथ प्रयत्न किए। उनका चिन्तन बहुत क्रान्तिकारी था। जैन धर्म में जातिवाद के लिए कोई स्थान नहीं था; किन्तु पिछली शताब्दियों में जैन समाज में भी उसका प्रभाव बढ़ गया था। आचार्य श्री ने उसके विरुद्ध महान् क्रान्ति की।

धर्म के क्षेत्र में परलोकवादी चिन्तन का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। आचार्य श्री ने वर्तमान जीवन के साथ धर्म का सम्बन्ध जोड़ा। धर्म की मुख्य कसौटी आचरण है। अधिकतर लोग भक्ति व उपासना के नाम पर अपने धर्म की महत्ता और विशेषता समझते हैं। उनका आचार-व्यवहार आदर्शों व सिद्धान्तों के बिल्कुल विपरीत होता है। एक बार आचार्य श्री का बिहार राज्य की पदयात्रा में एक चर्च में जाना हुआ। वहाँ एक पादरी महोदय ने ईसाई धर्म का महत्त्व बताते हुए कहा—आचार्य श्री! महात्मा ईसा ने शत्रु के साथ मित्रता का व्यवहार करने का उपदेश दिया है। आचार्य श्री ने कहा-आपका कहना अच्छा है। महापुरुषों ने जो भी कहा है उसका आचरण जरूरी है। तीर्थंकर महावीर ने इससे भी आगे कहा है—किसी को शत्रु मानना भी भूल है। प्राणीमात्र के प्रति हमें मित्रता की अनुभूति करनी चाहिए।

परम्परा से सभी जैन बन्धु स्वयं को अनेकान्तवादी कहते हैं; किन्तु आचार्य श्री तुलसी स्वभाव से अनेकान्तवादी थे। उनके चिन्तन में समन्वय व समता का स्पष्ट दर्शन होता था। वे नवीनता और प्राचीनता का आग्रह उचित नहीं समझते थे—

''पुराण मित्येव न साधु सर्वं, न चापि नूनं नव मित्यवद्यं''

महाकवि कालिदास का यह सुभाषित उनके जीवन का आदर्श था। सत्य का निर्णय नए और पुराने के आधार पर नहीं होना चाहिए। 'जो मेरा है,वही सत्य है' के स्थान पर उन्होंने 'जो सत्य है वह मेरा है' इस सूत्र की प्रतिष्ठा की है। अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से उन्होंने सर्वधर्म सद्भाव के विकास के लिए महान् कार्य किए।

अणुव्रत की आचार संहिता में सभी धर्मों के प्रमुख सिद्धान्तों का समावेश है। अणुव्रत के सदस्यो में सभी धर्मों व वर्गों के लोग हैं। जब हम बम्बई चातुर्मास कर रहे थे, उस समय महाराष्ट्र में श्वेताम्बर व दिगम्बर परम्पराओं में एक तीर्थ-स्थान से सम्बन्धित विवाद चल रहा था। महाराष्ट्र सरकार उस बात से चिन्तित थी। गृह राज्यमंत्री श्री कल्याणराव पाटिल ने राष्ट्र संत आचार्य विनोबा भावे से विचार विमर्श किया। विनोबा जी ने कहा—दोनों सम्प्रदायों को आचार्य श्री तुलसी पर निर्णय का भार सौंप देना चाहिए। श्री पाटिल ने स्वयं यह प्रसंग मुझे सुनाया था। आचार्य श्री की समन्वयवृत्ति का प्रभाव कितना व्यापक था, इस प्रसंग से भी यह स्पष्ट झलकता है।

आचार्य श्री तुलसी एक ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनके जीवन का हर दिन एक नया इतिहास लिए होता था। उनके आचार्यकाल में नैतिक व आध्यात्मिक जागरण के जो अभिनव कीर्तिमान स्थापित हुए हैं, वे विश्व के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। दिल्ली के लाल किले के विशाल मैदान में आचार्य प्रवर का स्वागत करते हुए मैंने कहा था—'आचार्य श्री नेता नहीं, धर्माचार्य हैं। नेता अपने अनुयायियों की आँखें मूंदी रखना चाहता है; जबकि धर्माचार्य अपने सभी अनुयायियों की आँखें खुली देखना चाहते है।' आचार्यश्री ने अध्ययन और विचारों की अभिनव दिशाओं का उद्घाटन कर अपने धर्मसंघ में विवेक और प्रज्ञा का अद्भुत विकास किया। मेरी दृष्टि में उनके आचार्यकाल का यह एक विशिष्ट और गौरवशाली अध्याय है। उन्होंने छोटी से छोटी बूंद के अस्तित्व का भी सम्मान किया एवं सैकड़ों, हजारों बुझते दीपों को नई ज्योति प्रदान की।

आचार्यश्री तुलसी एक आदर्श भिक्षु थे। जिन्होंने देश की हजारों सभाओं

में लाखों लोगों के समक्ष अपनी झोली फैलाते हुए कहा—'मुझे न नोट चाहिए, न वोट चाहिए, मुझे केवल आप लोगों की खोट (बुराई) चाहिए।' यदि आप मेरी झोली भर सके तो इससे बड़ी मेरे लिए और कोई भेंट नहीं हो सकती। डॉ. राधाकृष्णन् ने वर्तमान विश्व के महापुरुषों में आचार्य श्री तुलसी का आदर-पूर्वक उल्लेख किया है। अपनी लेखनी से उन्होंने उनके जीवन और दर्शन पर एक विशिष्ट निबन्ध लिखा है, जो उनकी पुस्तक में प्रकाशित हुआ है।

चरैवेति-चरैवेति के मंत्रदाता

संस्कृत श्लोक में कहा है—

कलिः शयानो भवति, स-जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्।।

''जो प्रमाद की नींद में सोता है उसके लिए हर समय कलियुग है, जो अंगड़ाई लेकर जागने का प्रयास करता है उसके लिए द्वापर है, जो बढ़ने के लिए तत्पर है उसके लिए त्रेता है, जो लक्ष्य की ओर निरंतर गतिमान है उसके लिए सतयुग है।'' इस श्लोक के अनुसार आचार्य श्री तुलसी का गतिशील और प्राणवान व्यक्तित्व सतयुग का पर्याय था। उनकी सन्निधि में नई ऊर्जा और प्रेरणा का संचार होता था। 'चरैवेति-चरैवेति' उनके जीवन का प्रमुख मंत्र था। उनके चिंतन में रुढ़िवाद और संप्रदायवाद का आग्रह नहीं था। प्रज्ञा और पुरुषार्थ की तूलिका से उन्होंने जीवन की पुस्तक में हर वर्ष नया रंग भरा। वे जन-जन के श्रद्धा-केन्द्र और प्रेरणास्रोत थे।

आचार्य तुलसी श्रमण संस्कृति के तेजस्वी नक्षत्र थे। उन्होंने ग्यारह वर्ष की उम्र में मुनि दीक्षा स्वीकार की। उन्होंने लगभग २० हजार पद्य कंठस्थ किए। सोलह वर्ष की उम्र में उनके शिक्षक-जीवन का प्रारम्भ हो गया। उनके सान्निध्य और मार्गदर्शन में विशिष्ट प्रतिभाओं का निर्माण हुआ। साध्वी संघ के चतुर्मुखी विकास में उनका जो योगदान रहा, वह इतिहास के पृष्ठों पर चिरस्मरणीय रहेगा। आचार्य तुलसी २२ वर्ष की उम्र में आचार्य पद पर आरूढ़ हुए। उनके जीवन में लगभग ग्यारह वर्षों के अन्तराल से नए-नए अध्यायों का प्रारम्भ होता रहा।

आचार्य तुलसी मानव धर्म के मसीहा थे। अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से उन्होंने सभी धर्मों का नवनीत प्रस्तुत किया। एक संप्रदाय के आचार्य होते

हुए भी वे असाम्प्रदायिक धर्म के व्याख्याता थे। अपने परिचय में वे कहते थे—मैं सर्व प्रथम मानव हूं, उसके पश्चात जैन और तेरापंथी। यह उनके उदार चिन्तन का परिचायक था। वे एक क्रान्तिकारी धर्माचार्य थे। जातिवाद, दहेज प्रथा व पर्दा प्रथा आदि सामाजिक रूढ़ियों व विकृतियों के उन्मूलन में उनका मार्गदर्शन बहुत प्रेरणादायक रहा।

राजस्थान के एक गांव में आचार्यश्री प्रवचन कर रहे थे। उस सभा में हरिजन बंधु काफी संख्या में उपस्थित थे। वहां के जैन लोगों ने उनके साथ बैठने में संकोच किया। वे उन्हें वहां से उठाने लगे। आचार्यश्री ने कहा—मनुष्य जाति से नहीं गुण से महान् होता है। मेरी सभा में जाति के आधार पर भेदभाव उचित नहीं है। इस घटना के बाद इस प्रकार के प्रसंगों की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

आचार्य तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में आत्मविश्वास और विवेक जागरण पर विशेष बल दिया। उन्होंने अन्धविश्वास और थोथे रूढ़िवाद के विरुद्ध महान् क्रान्ति की। संप्रदायवाद और मजहबवाद का नशा अन्य नशों से भी अधिक भयावह है, यह उनका अभिमत था। धर्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य सत्य की खोज है। वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में धर्म और धार्मिक भूमिका के अभाव में विज्ञान मानवता के लिए वरदान सिद्ध नहीं हो सकते। आचार्य तुलसी ने धर्म और विज्ञान के समन्वय पर विशेष बल दिया। उनका ७५वां वर्ष योगक्षेम वर्ष के रूप में बनाया गया, जिसका लक्ष्य आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण था। योगक्षेम वर्ष में धार्मिक आचार-विचार की वैज्ञानिक आधार पर सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक व्याख्यायें प्रस्तुत की गईं।

अणुव्रत आन्दोलन के नैतिक और आध्यात्मिक संदेश के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु आचार्य तुलसी की विशाल पदयात्राएं सफल और प्रेरणादायक रहीं। पंजाब से लेकर कन्याकुमारी तक हजारों गांवों, नगरों में घूमकर उन्होंने नैतिकता का शंखनाद किया। लोक जागरण के क्षेत्र में भारत के इतिहास में इन यात्राओं का विशेष महत्त्व है। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बी.पी.नाईक ने बम्बई में सागर तट पर आचार्य तुलसी का स्वागत करते हुए कहा था—''हमारे राष्ट्र में संतों की पदयात्राओं की एक विशिष्ट परम्परा हैं, पर मेरी नजर में अणुव्रत प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की पदयात्रा अभूतपूर्व हैं। इसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिक गंध नही हैं। यह पदयात्रा विशुद्ध रूप से मानवता और

आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा के लिए है।'' पदयात्रा में अनेक विश्वविद्यालयों व राष्ट्र के सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्थानों में आचार्यश्री के प्रवचन हुए। राष्ट्रपति भवन और संसद भवन से लेकर छोटी-छोटी झोंपड़ियों में अणुव्रत के कार्यक्रम हुए। आचार्यश्री के धार्मिक विचारों और मानवतावादी कार्यक्रमों से नास्तिक और साम्यवादी विचारक भी भावनात्मक रूप से जुड़ गए। जब आचार्य श्री तुलसी ने केरल की पदयात्रा की तब वहां साम्यवादी सरकार थी। राज्य के मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने राज्य की ओर से आचार्य प्रवर का हार्दिक स्वागत किया व जहां भी गुरुदेव पधारे, उन्होंने राज्य सरकार की ओर से स्थान आदि की व्यवस्था की दृष्टि से विशेष ध्यान दिया।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. जाकिर हुसैन आदि राष्ट्र के शीर्षस्थ नेता, सैकड़ों सुप्रसिद्ध समाजसेवी, अहिंसावादी विचारक, वैज्ञानिक और साहित्यकार उनके विचारों और कार्यक्रमों से प्रभावित हुए। आचार्य विनोबा भावे और आचार्य तुलसी का दिल्ली में राजघाट और पवनार आश्रम में दो बार मिलन हुआ। विनोबा सर्वोदय और अणुव्रत के कार्यक्रम को पूरक और सहयोगी मानते थे।

आचार्य तुलसी की पदयात्राओं से राष्ट्रीय एकता और चरित्र निर्माण का आधार सबल बना है। तमिलनाडु में उनकी पदयात्रा के समय हिन्दी भाषा का उग्र विरोध हो रहा था। इसलिए कतिपय हित-चिन्तकों ने तमिलनाडु की पदयात्रा नहीं करने का सुझाव दिया। किन्तु; यात्रा के परिणाम बहुत आश्चर्यजनक और सकारात्मक रहे।

जीवन के अनेक वर्ष लोकजागरण के लिए विशेष रूप से समर्पित करने पर तथा पदयात्रा में व्यस्त रहने पर भी आचार्यश्री तुलसी की साहित्य-साधना का स्रोत अविरल गति से आगे बढ़ता रहा। कालूयशोविलास, जैन सिद्धान्त दीपिका, भिक्षु न्यायकर्णिका, मनोनुशासनम् आदि ग्रंथ-रत्न उनकी ऊर्वर प्रतिभा की देन हैं। आचार्यश्री का प्रवचन-साहित्य भी बहुत समृद्ध है, जिसका विभिन्न भागों में व्यवस्थित संपादन और प्रकाशन हुआ है। कतिपय विद्वानों ने आचार्य तुलसी को जंगम विश्वविद्यालय के विशेषण से संबोधित किया। उनकी पदयात्रा में जहां लोकजागरण का कार्य हुआ, वहां अध्ययन और अनुसंधान का कार्य भी व्यवस्थित रूप से चलता था।

आचार्य श्री तुलसी का जीवन साम्ययोग की साधना का अनुपम उदाहरण था। स्वागत और विरोध के क्षणों में उनके विचार और व्यवहार में समता और तटस्थता का प्रत्यक्ष दर्शन होता था। हजारों की भीड़ में भी उनकी आत्मस्थता और स्थितप्रज्ञता जन-जन के लिए प्रेरणादायक थी। आचार्यश्री के सान्निध्य और मार्गदर्शन में जो जैन आगमों के अनुसंधान का कार्य हुआ है, उसकी सर्वत्र मुक्त कंठों से प्रशंसा हुई है।

आचार्य तुलसी के मार्गदर्शन से इतिहास के जिन स्वर्णिम और प्रेरक अध्यायों का निर्माण हुआ है, वे आचार्य महाश्रमण के दिशादर्शन में समाज के लिए युग-युग तक प्रकाश-स्तम्भ का काम करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

सहज योगी

एक आचार्य ने पूछा—क्या आप अष्टांग योग की साधना करते हैं? आचार्य ने कहा—''परोहि योगः सहजा प्रवृत्तिः'' खाते-पीते, चलते-फिरते हर प्रवृत्ति में सहजता और समता रखना सबसे बड़ा योग है। मैं निरन्तर इस योग की साधना करता हूं। अष्टांग योग का फलित भी यही है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लिखा है—''कुछ व्यक्ति प्रतिदिन योग की साधना करते है, कुछ व्यक्ति जन्म से योग सिद्धि लेकर आते हैं और सिद्ध पुरूष बन जाते हैं। आचार्यश्री तुलसी दूसरी श्रेणी के पुरूष थे।'' आचार्यश्री तुलसी सहज योगी थे, अप्रमत्त साधक थे। प्रातः चार बजे से लेकर लगभग रात्रि में दस बजे तक नाना प्रकार की प्रवृत्तियों में व्यस्त रहते थे। प्रवचन और अध्यापन वर्षों तक उनकी दिनचर्या के अभिन्न अंग थे। ''रहें भीतर-जीए बाहर'' उनकी जीवनशैली का यह प्रमुख सूत्र था। ''युद्धस्व विगत ज्वर'' जीवन के संग्राम में राग-द्वेष के ताप से मुक्त होकर जूझो। भगवत गीता के इस प्रेरक सुभाषित को उन्होंने गहराई से आत्मसात् किया था।

उनकी सहज योग की साधना के प्रमुख सूत्र थे भावक्रिया, विधायक चिंतन और समभाव।

सहज योगी भावक्रिया का साधक होता है। वह जो भी करता है, समग्रता से करता है, उसमें व्यग्रता का भाव नहीं होता। समग्रता और व्यग्रता दोनों विरोधी हैं।

आचार्यश्री तुलसी जो भी करते वह समग्रता से करते थे। जब प्रवचन देते सारी परिषद् उनके साथ उसी भाव धारा में वह जाती। शिक्षित—अशिक्षित कैसे भी श्रोता होते उनके प्रवचन में मंत्रमुग्ध और तन्मय हो जाते। यह उनकी भावक्रिया का परिणाम था।

इस तरह जब अध्यापन कराते तो वें बड़ी तन्मयता से समझाते जिससे गहन से गहन विषय भी सबके हृदयगंम हो जाता। उनके जीवन में भावक्रिया के अनेक प्रसंग प्रसिद्ध है। एक बार वे दिल्ली से विहार कर पिलानी पधारे। दिल्ली प्रवास में जुगल किशोरजी बिड़ला बहुत संपर्क में आ गए थे। जब आचार्यश्री का पिलानी पधारना निश्चित हुआ तो वे भी दिल्ली से पिलानी आ गए। उन्होंने वहां आचार्यवर का स्वागत किया और साथ में चलकर विशाल शिक्षण संस्थान का परिचय दिया। आचार्यश्री बिड़लाजी जो बोलते उसे सुनते और जब बोलना होता तो पांव रोककर बोलते। जब आचार्यश्री तीन-चार बार रूके तो जुगलकिशोर जी ने कहा—आप बार-बार रूकते क्यों हैं? क्या आपके पांव में दर्द हैं? आचार्यश्री ने कहा—बिड़लाजी! हम चलते समय बोलते नहीं है, यह हमारा नियम है। बिड़लाजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा-आप इतने बड़े आचार्य हैं, छोटे-छोटे नियमों का कितना ध्यान रखते हैं। यह भावक्रिया का उत्कृष्ट उदाहरण है।

जो भावक्रिया का साधक होता है वह लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पित होता है। उसका श्रद्धाबल अखंड होता है। बहुत बार मनुष्य शरीर से कुछ करता है, वचन से कुछ बोलता है पर, उसका भावक्रिया में मन, वचन, शरीर का समन्वय आवश्यक है। एक प्रसिद्ध चित्रकार ने शादी नहीं की। किसी ने उससे शादी नहीं करने का कारण पूछा। उसने कहा-सफलता की देवी उसी के गले में वरमाला पहनाती है जो अपने लक्ष्य के प्रति अखंड श्रद्धा और समर्पण का भाव रखता है। यदि मैं शादी करता तो मेरा समर्पण खंडित हो जाता, विभक्त हो जाता। उस चित्रकार के चित्र विश्व प्रसिद्ध हुए। आध्यात्मिक साधना के लिए कला से भी अधिक समग्रता और स्थिरता का विकास आवश्यक है। भावक्रिया की साधना तभी सफल होती है।

आचार्यश्री तुलसी सरदारशहर में एक वार प्रतिक्रमण कर रहे थे। अचानक एक छिपकली पीठ पर चढ़ गई। पर, आचार्यश्री ने ध्यान का भंग नहीं किया। ध्यान संपन्न होने पर पता चला कि दाहिनें हाथ पर छिपकली चढ़ गई। सामान्य व्यक्ति मक्खी-मच्छर से भी विचलित हो जाता है। समय-समय पर उनके लंबे जीवन में अनेक घटनाएं घटित हुई जो हम सबके लिए प्रेरणादायक है।

आचार्यश्री तुलसी का चिंतन हर स्थिति में विधायक रहता था। वे प्रतिकूलता में भी अनुकूलता का अनुभव करते थे। उन्होंने अपनी दैनिक डायरी में लिखा है—'मेरे विकास में सबसे बड़े सहयोगी मेरे जीवन में आए संघर्ष रहे हैं। संघर्षो को मैं परम उपकारी मानता हूं।' यह उनके विधायक चिंतन का परिचायक है। वि.सं. २०१४ में आचार्यश्री तुलसी ने उत्तरप्रदेश की यात्रा की। एक दिन लखनऊ से कानपुर की ओर विहार करते हुए दोपहर में लम्बा विहार किया। उस समय गर्मी का भयानक परीसह था। संतों के कंधों पर वजन था, हाथों में पानी से भरे पात्र थे। आचार्यश्री थोड़ी दूर पधारे, पीछे से एक संतों ने कहा—आज का कष्ट तो याद रहेगा। आचार्यश्री के कानों में ये शब्द पड़ गए। उसी समय पांव रोककर उन्होंने उन संतों से कहा—ऊखल में सर दिया है तो मूसल की चोट से क्या डरना है? जब साधुपन स्वीकार किया है तो छोटे-मोटे कष्टों से क्या घबराना। कष्ट तो आने संभावित है। हमें तो गुण लेना चाहिए। आज सूरज हमारी पीठ के पीछे है। यदि सूरज सामने होता तो और अधिक कष्ट का अनुभव होता। यह सोचो—कष्ट आया तो सही, पर इतना ही आया। इस तरह अपने चिंतन को विधायक बनाओ। उस समय आचार्यश्री ने एक दोहा भी फरमाया—

सुख दुःख तो संसार में, सहु कोई के होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान स्यूं, मूर्ख भुगते रोय।।

जीवन में परीषह तो आते है। जो ज्ञानी होता है वह ज्ञान से समतापूर्वक सहन करता है, मूर्ख व्यक्ति उस कारण से आर्त्तध्यान से ग्रसित हो जाता है। आचार्यश्री तुलसी अपने प्रवचनों में बहुधा कहा करते—'जो दुःख को सुख में तथा निराशा के अंधकार को आत्मविश्वास के उजाले में बदलना जानता है, वह सच्चा धार्मिक होता है।'

जीवन के महासागर में नाना प्रकार की लहरें उत्पन्न होती रहती है। कभी अनुकूल लहर उत्पन्न होती है, कभी प्रतिकूल लहर उत्पन्न होती है। योगी वह होता है जो दर्पण की तरह तटस्थ और निर्लिप्त रहता है। दर्पण में सुरूप-चेहरा भी प्रतिबिंबित होता है, कुरूप चेहरा भी प्रतिबिंबित होता है। वह किसी भी चेहरे को भीतर संजोकर नहीं रखता। इसी तहर योगी निर्लिप्त रहता है।

आचार्यश्री तुलसी के जीवन में अनुकूलता और प्रतिकूलता की लहरें उत्कृष्ट सम्मान और अपमान के रूप में उत्पन्न हुई। देश के राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों ने तथा देश-विदेश के सैंकड़ों विद्वानों ने उनका श्रद्धा भरा स्वागत किया। उनकी अभिवंदना में भक्ति रस से ओत-प्रोत उद्‌गार प्रगट किए। उनकी षष्ठीपूर्त्ति के अवसर पर राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद ने अणुव्रत भवन में आकर उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया तथा उनकी सेवाओं के लिए राष्ट्र की ओर से मार्मिक विचार प्रगट किए। आचार्यश्री तुलसी ने अपने जीवन में घोर विरोध भी झेले। एक बार भयानक गर्मी में उन्होंने रतनगढ़ में मध्यान्ह में १२ बजे करीब विहार किया। शहर के बाहर गौशाला में ठहरने का कार्यक्रम था। गौशाला के अधिकारियों की स्वीकृति से कार्यक्रम निश्चित हुआ था। पर, ''अग्निपरीक्षा'' पुस्तक के नाम पर उत्तेजित हुए विरोधी लोगों ने गौशाला में जाने का मार्ग रोककर खड़े हो गए। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष गोपालजी खेमका व निर्मल कुमारजी सुराणा ने समझाने का प्रयास किया। खेमकाजी को विरोधी लोगों ने घूंसे मारे। कोई भी समझाने का प्रयास करता तो उसके साथ मारपीट करने लग जाते। इस तरह भरी दुपहरी में आचार्य प्रवर बाहर खड़े रहे। संतों के कंधों पर वजन था। आखिर सड़क के किनारे एक पीपल का वृक्ष था। उसके नीचे गड्ढा बना हुआ था। पचासों श्रावक-श्राविकाओं ने तंबू लगाकर सेवा की। वहां लगभग ३-४ घंटे ठहरे। पास में ओर भी वृक्ष थे उनके नीचे संत बैठ गए। वहां पर भी आचार्यश्री ने आगमों का कार्य शुरू कर दिया, स्वाध्याय करते हुए वहां के समय का भी आचार्यश्री ने उपयोग किया। प्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्रजी और देवेन्द्र भाई कर्णावट भी वहां थे। जैनेन्द्रजी ने कहा—'आज के युग में ऐसा निकृष्ट व्यवहार हो सकता है, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।' लोगों को धर्मशाला की टूंटियों से पानी भी नहीं भरने दिया। श्रावक समाज ने गांव से पानी की व्यवस्था की। विरोधियों ने वहां पर भी मुठी भरकर रेत फैंकी, पथराव किया। ऐसी स्थिति में भी आचार्यश्री ने प्रसन्नता, आनन्द का अनुभव किया। मैं इस प्रसंग का भी प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं। हमारे मन में आचार्यश्री के साथ हुए इस व्यवहार से पीड़ा हो रही थी। पर, आचार्यश्री ने इस विकट विषम स्थिति में समभाव की साधना से एक सच्चे योगी का उदाहरण प्रस्तुत किया। उस समय मुझे ''समयाए समणो होइ'' तथा

''समया धम्म मुदाहरे मुणी'' इन आगम सूक्तों का स्मरण हो गया। श्रीमद्‌भगवद् गीता में भी कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि, मतोधिकः।
कर्मिभ्य श्चाधिको, योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन।।

तपस्वी, ज्ञानी और पुरूषार्थी से योगी का महत्त्व अधिक है। बहुत से साधक अरण्यवास और एकांतवास में योग साधना करते हैं। पर, आचार्यश्री तुलसी ने हजारों की भीड़ में रहते हुए विशाल धर्मसंघ का दायित्व निभाते हुए जो उत्कृष्ट साधना की वह उनके महासाधक होने का संदेश देती है। ऐसे समभावी और सहज योगी समाज के लिए युग-युग तक प्रकाश स्तम्भ बन जाते है।

भावात्मक एकता के मन्त्रद्रष्टा

एक अंग्रेजी भाषा के कवि ने कहा है—''संसार में चिरन्तन प्रकाश भरा पड़ा है। महापुरूष अपने दिव्य चक्षुओं से उसे युनानुकूल संयोजित कर अन्धकार के आवरण को दूर करते है।' वास्तव में यह एक महान सत्य है। महात्मा गांधी ने अहिंसा का नया आविष्कार नहीं किया था। उनके पहले भी अहिंसा के स्वर विभिन्न दिशाओं में प्रतिध्वनित हो रहे थे किन्तु उस ध्रुव सत्य का युग सत्य के रूप में नया प्रयोग करके उन्होंने सारे संसार को चमत्कृत कर डाला। अणुव्रत नये नहीं है, किन्तु नैतिक महायज्ञ के रूप में होने वाले उनके सामयिक प्रयोग का एक विशेष महत्व है, जो अणुव्रत आन्दोलन के रूप में प्रसिद्ध है और जिसके प्रवर्तक है—आचार्य श्री तुलसी। द्वितीय महायुद्ध से जर्जरित बनी हुई नैतिकता देवी के त्राण के लिए जिनका यह प्रयास एक विशेष वरदान सिद्ध हुआ। नैतिकता की नींव सुदृढ़ बनाए बिना किसी भी तन्त्र का महल चिरस्थायी नहीं बन सकता, यह उनकी एक सबल धारणा थी। भारत में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को उन्होंने मौजूदा प्रजातन्त्र के लिए भयानक खतरा घोषित किया। उनका कहना था—''सीमान्त राष्ट्रों से भी अधिक नुकसान उन लोगों से होने की सम्भावना है जो धौले-धौले में भी निम्नस्तर के स्वार्थ व साम्प्रदायिकता की घिनौनी वृत्तियों के काले नाग को पुचकार-पुचकार कर बढ़ावा दे रहे है।'' इस नैतिक यज्ञ की शिखा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए आचार्य श्री के पास सैकड़ों विद्वान व कर्मठ साधु-साध्वियों की सबल सेना थी, जिसके सभी सदस्य इस महान् अनुष्ठान में अपनी यत्किंचित आहुति देते रहना अपना जीवन व्रत मानते रहे हैं। नैतिकता की इस अलख को गांव-गांव में जगाने के लिए आचार्य श्री ने हजारों मील की लम्बी पद यात्राएं की है जो इस दिशा में बहुत सफल रही हैं। ''सफल शिक्षा के साथ नैतिकता और

अध्यात्मिकता का समावेश अनिवार्य है'' उनका यह घोष आज भी सभी दिशाओं में सुनाई दे रहा है।

आचार्य श्री एक अधात्म साधक थे। मानवता के त्राण के लिए विज्ञान के साथ अध्यात्म के समन्वय को वह बहुत आवश्यक समझते थे। किन्तु, अध्यात्म में आई हुई विकृतियों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। आज के युग में होने वाली अध्यात्म की हानि के लिए उन्होंने तथाकथित आध्यात्मिक लोगों की पाखण्डपूर्ण मनोवृत्ति को बहुत कुछ उत्तरदायी ठहराया। उनका कहना था—''अध्यात्म जीवन का दर्शन है। उसे मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों में व सुनसान कन्दराओं में सीमित नहीं किया जा सकता वह व्यापक है। उसकी साधना हर क्षण और हर स्थान में की जा सकती है।''

आचार्य तुलसी सैकड़ों श्रमण परिव्राजकों की सेना के एक महान् धर्मशास्ता थे। शहर-शहर और गांव-गांव में घूमकर जन-जन में सदाचार और सहअस्तित्व की ज्योति प्रज्वलित करना जिनका परम लक्ष्य था। एक धर्माचार्य होते हुए भी उनके विचार धर्म की विकृत और संकीर्ण मान्यताओं से बिल्कुल स्वतंत्र थे। धर्म को केवल मन्दिर और मस्जिद आदि में उपासना का विषय बनाना वे उचित नहीं समझते थे, किन्तु उसे वे जीवन के एक व्यापक और स्थायी सत्य के रूप में स्वीकार करते थे। धर्म के साथ सत्ता और पूंजीवाद के गठबन्धन का उन्होंने घोर विरोध किया।

आचार्य तुलसी प्रजातंत्र के महल को नैतिकता और एकता पर आधारित मानते थे। उनके विचारों के अनुसार प्रजातंत्र वहीं सफल हो सकता है जहां का नागरिक जीवन इन दोनों सिद्धांतों की आदर्श शृंखला से संबद्ध हो। भ्रष्टाचार व पारस्परिक संकीर्णता के वातावरण में उसके बीच अंकुरित नहीं हो सकते। यदि हो भी जाते हैं तो उन्हें हर समय सूखने और झुलसने का भय रहता है। जिन राष्ट्रों में प्रजातंत्र असफल हुआ है व हिंसक और सैनिक शक्तियों को पांव बिछाने का मौका मिला है वहां आर्थिक दरिद्रता का भाव रहा है।

सैनिक शक्ति की दुर्बलता से चीन का आक्रमण करने का दुःसाहस हुआ, यह एक दृष्टि से सत्य है। किन्तु आचार्य तुलसी व्यापक रूप से छाए हुए भ्रष्टाचार व साम्प्रदायिकता की संकीर्ण मनोवृत्ति को भी इसके पीछे महान

कारण मानते थे। यदि देश का वातावरण नैतिकता और एकता से ओत-प्रोत होता तो संभवतः भारत को यह स्थिति देखनी नहीं पड़ती। आज जनता को सरकार से असंतोष है, सरकार को जनता से। यह एक जटिल स्थिति है। जिसका समाधान दोनों ओर से नैतिकता और एकता के विकास का दृढ़ लक्ष्य बनाने से ही संभव हो सकता है व प्रजातंत्र का भविष्य भी तभी अधिक उज्ज्वल बन सकता है।

किसी भी तथ्य को आगे बढ़ाने के लिए दो मार्ग होते हैं, एक जन-शक्ति और दूसरा राज्यशक्ति का। आचार्य तुलसी का विश्वास जनशक्ति में था। यद्यपि आज देश में कानून और पुलिस की शक्ति के रूप में राज्यशक्ति का प्रभाव बहुत अधिक छा रहा है, किन्तु उसे वे उचित नहीं समझते थे। जनता को प्रशिक्षित, जागृत और संगठित किए बिना केवल दण्ड-शक्ति से किसी भी प्रकार का सुधार संभव नहीं हो सकता है। प्रत्युत् उससे भ्रष्टाचार अधिक बढ़ता है व राष्ट्र की अंतरात्मा दुर्बल बनती है। आचार्य तुलसी के विचारों के अनुसार राज्य शक्ति के अधिक नियंत्रण से जीवन का मार्ग सरल नहीं जटिल बनता है।

दो विरोधी दिशाओं में समन्वय की धारा को खोज निकालना आचार्य श्री के स्याद्वादी जीवन का एक सहज धर्म था। मानसिक अहिंसा के विकास के लिए विरोधी से विरोधी विचारों को शान्ति से सुनना व उस पर उदारता से विचार करना उनकी दृष्टि में सबसे पहली बात थी। नवीनता और प्राचीनता के लिए उनका कहना है-पुरानी होने से कोई वस्तु बुरी नहीं है, नई होने से अच्छी नहीं है, हमें हंस बनकर विवेक बुद्धि से गुण अवगुण की परीक्षा करनी चाहिए। धार्मिक एकता के लिए उन्होंने पंचसूत्री आचार-संहिता प्रस्तुत की है, जिसमें सहअस्तित्व, समानता व उदारता पर विशेष बल दिया गया है। विभिन्न धार्मिक क्षेत्रों में जिसका काफी अच्छा स्वागत हुआ है। एक विशाल वटवृक्ष को देखकर उनके भावुक हृदय से यह उद्‌गार निकल पड़ा था इन सैकड़ों शाखाओं से सहअस्तित्व और समन्वय का महान् पाठ सीखा जा सकता है। कितना अच्छा होता यदि भिन्न-भिन्न सभी सम्प्रदाय सीख पाते। अणुव्रत-आन्दोलन के साथ भावात्मक एकता का अभियान प्रारम्भ करके राष्ट्र समन्वय

और एकता का वातावरण बनाने के लिए उन्होंने महान् कार्य किया।

२२ वर्ष की अवस्था में यौवन प्रवेश के समय आचार्य श्री तुलसी के कन्धों पर आचार्य पद का गुरूतर दायित्य आया था। वह एक इतिहास की अनूठी घटना थी। ६१ वर्षो में उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में सेवाएं दी। अपनी साधना के बल से संसार को एक नया प्रकाश दिया। राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने आयोजित धवल समारोह में मानवता के महान् पुनरूद्धारक के रूप में उनका हार्दिक स्वागत किया था।

हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास

जैन आचार्य भाषा की दृष्टि से सदा उदार रहे हैं। जिस भाषा में जनता समझ सके उसमें प्रवचन करना उनका लक्ष्य रहा है। यह प्रेरणा उन्हें तीर्थंकरों से मिली। तीर्थंकरों ने जन भाषा का उपयोग किया। उन्होंने विद्वानों की भाषा का आग्रह नहीं रखा। धर्म और समाज में भाषा का विवाद हिंसा का कारण बनता रहा है। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं। पर जैन परम्परा ने सदा अनेकान्त दृष्टि को प्रधानता दी है। उन्होंने आग्रह और विग्रह को बिल्कुल उचित नहीं समझा। जैन आचार्य जिस प्रदेश में गये वहां की भाषा में उपदेश दिया और उस भाषा में विपुल साहित्य लिखा। राजस्थान और गुजरात में जैन साधुओं का बहुत विहार हुआ, उन्होंने वहां की भाषाओं का मुक्त हृदय से उपयोग किया। कर्नाटक और तमिलनाडू में जब जैन संतों का पदार्पण हुआ तब कन्नड़ और तमिल भाषाओं में उपदेश दिया और अपनी लेखनी से वहां के साहित्य भण्डार को समृद्ध बनाया। वहां के साहित्यकार मानते हैं यदि हमारी भाषाओं के साहित्य से यदि जैन साहित्य को अलग कर दिया जाए तो हमारे साहित्य में एक बहुत बड़ी रिक्तता हो जाएगी।

आचार्यश्री तुलसी का जीवन अनेकान्त की प्रयोगशाला था। पहले वे राजस्थानी भाषा में प्रवचन करते थे जब जनता की मांग हिन्दी भाषा के लिए हुई तो उन्होंने सहजता से उसे स्वीकार किया और हिन्दी में प्रवचन करना शुरू कर दिया। अपने शिष्य परिवार को हिन्दी भाषा के अभ्यास और विकास की प्रेरणा दी। आचार्यश्री जो भी निश्चय कर लेते उसकी क्रियान्विति में विलम्ब नहीं करते। 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः' इस सुभाषित के अनुसार उनका जीवन पुरुषार्थ की प्रतिमा था, सफलता की लक्ष्मी ने उनका सतत अनुसरण किया। जब हिन्दी भाषा का धर्मसंघ में विकास का निश्चय हुआ तब

अनेक प्रतिभाशाली साधु-साध्वी उसमें वक्तव्य देने और साहित्य लिखने में संलग्न हो गये।

वि.सं. २००३ में आचार्यप्रवर का चतुमास राजगढ़ (चूरू) में हुआ उस वर्ष बगड़ी (पाली) में तेरापंथ प्रवक्ता श्री मोतीलालजी रांका की अन्य जैन सम्प्रदाय के एक प्रमुख आचार्यश्री से लम्बी तत्त्व चर्चा हुई, रांकाजी ने उस चर्चा के विस्तृत समाचार आचार्यप्रवर को निवेदनार्थ राजगढ़ भेजे। आचार्यश्री ने उन पत्रों को ध्यान से पढ़ा और मेरे जैसे छोटे मुनियों से वे पत्र पढ़ाये, पत्रों में प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ बताए। आचार्यप्रवर ने फरमाया—मुझे मोती रांका की हिन्दी भाषा बहुत अच्छी लगती है, तुम लोग ऐसी भाषा लिखने का अभ्यास करो। उनके समक्ष कोई भी निमित्त उपस्थित होता तो उसे माध्यम बनाकर सभी साधु-साध्वियों को शुद्ध और सुचारु हिन्दी के विकास की प्रेरणा देते। समय-समय पर संस्कृत की तरह हिन्दी में भी निबन्ध और भाषण प्रतियोगिताएं हुई। लगभग ५-७ वर्षों में धर्मसंघ के पचासों साधु-साध्वियों ने हिन्दी में अच्छी प्रगति कर ली।

आचार्यश्री तुलसी के आचार्य पद पर आरूढ़ होने के एक दशक तक हिन्दी में एक भी अच्छी पुस्तक नहीं थी। पर बाद में साहित्य की धारा प्रवाहित हो गई। तेरापंथ धर्मसंघ की पहली पठनीय हिन्दी पुस्तक मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) द्वारा लिखित 'जीव अजीव' है। इस पुस्तक का बहुत व्यापक उपयोग हुआ। हजारों व्यक्तियों ने इसके माध्यम से तत्त्वज्ञान का गहरा अभ्यास किया। साधु-संघ की तरह साध्वी-संघ ने भी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी की लेखनी से प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैसे मनीषी बहुत प्रभावित हुए। एक समय था जब लोग कहते थे, हमारे संघ में हिन्दी की एक भी पढ़ने योग्य पुस्तक नहीं है। अब वे ही कहते हैं, साहित्य का भण्डार इतना समृद्ध हो गया है, हम क्या-क्या पढ़ें? यह सब आचार्यश्री तुलसी के पुण्य प्रभाव की देन है। देश के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में साधु-साध्वियों द्वारा लिखित सामग्री प्रकाशित होती रहती हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का देश के हिन्दी साहित्यकारों में वरिष्ठ स्थान है, समय-समय पर साहित्य जगत् में उनके साहित्य की चर्चा होती रहती है।

जैन समाज के प्रसिद्ध संत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी ने राजगृह में

वार्तालाप करते हुए मुझे कहा था–''आचार्यश्री तुलसी ने तेरापंथ का काया पलट कर दिया है। पहले तेरापंथी सम्प्रदाय की हिन्दी भाषा में खोजने पर भी पुस्तक नहीं मिलती थी, पर आज लगता है, साहित्य की बाढ़ सी आ गई है। आपके धर्म संघ की साध्वियां भी बहुत अच्छा लिखती है। मैं हमारी साध्वियों से कहता हूं, तेरापंथी साध्वियों से लिखना सीखना चाहिए।''

आचार्यश्री तुलसी ने जब दक्षिण यात्रा का निश्चय किया तब तमिलनाडू में हिन्दी का उग्र विरोध था। इसलिए श्री मोरारजी भाई देसाई जैसे अनेक हितैषी लोगों ने यह परामर्श दिया–आप हिन्दी में प्रवचन करते है, तमिलनाडू में हिन्दी का उग्र विरोध है, इसलिए आपका उधर जाना ठीक नहीं है, पर आचार्यश्री ने कहा–अब हमारा निर्णय बदलना कठिन है। हमें शुद्ध भावना से अणुव्रत का प्रचार करना है। भाषा का विवाद राजनीति से प्रेरित है। हमें राजनीति से कोई लेना देना नहीं है। आचार्यश्री ने मनोबल के साथ दक्षिण की ओर पाद-विहार शुरू कर दिया। महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा को पार कर तमिलनाडू में प्रवेश किया। चैन्नई (मद्रास) पदार्पण पर विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक सभागार में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अन्नादुराई ने आचार्यश्री का स्वागत करते हुए कहा–आपका अणुव्रत कार्यक्रम मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। हम उसके प्रचार में पूर्ण सहयोग करेंगे। आप जैसे त्यागी, तपस्वी संतों की देश में बहुत जरूरत है। संतों की वाणी से ही हर मानव को सही मार्ग मिलता है। मेरा निवेदन है हमारे राज्य में अधिक समय देने की कृपा करें।

मुख्यमंत्री के वक्तव्य से सारा वातावरण बहुत सरस बन गया। आचार्यश्री के वक्तव्य का तमिलनाडू भाषा में अनुवाद करने का दायित्व सर्वोदयी कार्यकर्त्ता सुब्रह्मण्यम्जी ने संभाला। वे बहुत अनुभवी थे। जब आचार्य विनोवा भावे की दक्षिण में पदयात्रा हुई तब भी उन्होंने ही अनुवाद किया था। सार्वजनिक कार्यक्रमों में प्रवचन के प्रारम्भ में आचार्यश्री तमिल भाषा के शब्दों का भी उपयोग करते थे। जिससे वहां की जनता में प्रसन्नता का अनुभव होता। चैन्नई नगर में चतुर्मास काल में अणुव्रत का व्यापक प्रचार हुआ। उसके बाद सैकड़ों किलोमीटर तमिलनाडू के विभिन्न अंचलों में पाद विहार किया। आचार्यप्रवर के विचारों का सर्वत्र स्वागत हुआ। कहीं भी हिन्दी भाषा के नाम पर विरोध नहीं हुआ। चिदम्बरम् विश्वविद्यालय हिन्दी विरोध का प्रमुख केन्द्र

माना जाता था। उसमें भी शिक्षकों और छात्रों के अनुरोध पर हिन्दी भाषा में आचार्यप्रवर का प्रवचन हुआ।

चेन्नई में भारत के प्रथम गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आचार्यश्री से मिले। उन्होंने आचार्यश्री से कहा–आपकी तमिलानाडू यात्रा से यहां की जनता का बहुत लाभ हुआ है। आपने हिन्दी भाषा में प्रवचन किये, फिर भी किसी प्रकार का विरोध नहीं हुआ। यह खुशी की बात है, आपका राजनीति से कोई मतलब नहीं है। जो राजनीति से प्रेरित होकर हिन्दी भाषा थोपने का प्रयास करते हैं, उनका यहां विरोध होता है। आपके कार्यक्रमों के समाचार मुझे बराबर मिलते रहे हैं। दक्षिण में जो शाकाहार का प्रचार है, यह जैन संतों की देन है। आपने यहां के लोगों को देरी से संभाला है आचार्यश्री के घर पर पधारने पर राजगोपालाचार्य जी हर्ष विभोर हो गये। तमिलनाडू में जो संस्थाएं हिन्दी का प्रचार कर रही थी, उनके कार्यकर्ताओं ने कहा–हजारों रुपयों से जो काम नहीं हो सकता आपकी यात्रा से हिन्दी के प्रचार का वह काम हुआ है।

ईस्वी सन् १९८२ में भारत की राजधानी दिल्ली में विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ इसमें देश-विदेश के हजारों हिन्दी भाषी विद्वानों ने भाग लिया। उनमें लगभग चार सौ विदेशी विद्वान् थे। यह सम्मेलन राष्ट्र भाषा प्रचार समिति (वर्धा) की ओर से आयोजित हुआ था। महाराष्ट्र के पूर्व शिक्षा मंत्री श्री मधुकरराव चौधरी उस सम्मेलन के संयोजक थे। वे आचार्यश्री तुलसी के विचारों और कार्यक्रमों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने शिक्षामंत्री के रूप में महाराष्ट्र में अणुव्रत प्रचार में सहयोग दिया। उस समय मेरा चतुर्मास दिल्ली में था। जब श्री चौधरी को जानकारी यह मिली तो वे अणुव्रत भवन में मिलने के लिए आये। उन्होंने कहा–हम लोग दिल्ली में नये है, आपके यहां होने से विश्व हिन्दी सम्मेलन के कार्य में सुगमता हो जाएगी। उन्होंने विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन को विस्तार से अवगति देते हुए कहा–इस सम्मेलन के लिए हमने दो धर्म गुरुओं का संदेश मंगाने का निर्णय किया है। एक आचार्यश्री तुलसीजी का और एक स्वामी अखण्डानन्दजी का। दोनों के प्रति मेरे मन में बहुत श्रद्धा है। आचार्यश्री तुलसी के संदेश के लिए निवेदनार्थ मैं पत्र लेकर आया हूं। हमें समय पर संदेश मिल जाए यह आपको ध्यान देना है। जब मैंने पत्र पढ़ा तो उसकी भाषा श्रद्धा से ओतप्रोत थी। कुछ दिनों बाद आचार्यप्रवर का संदेश प्राप्त हो

गया। संदेश पढ़कर चौधरी जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—आचार्यश्री तुलसी का संदेश इन्दिरा गांधी स्टेडियम में प्रधानमंत्री की उपस्थिति में पढ़ा जाएगा। इसे प्रकाशित कर सब प्रतिनिधियों में वितरित करेंगे। दूसरे दिन के अधिवेशन में आपका वक्तव्य रखा है। कार्यक्रम के अनुसार आचार्यश्री का संदेश पढ़ा गया। श्री चौधरी ने आचार्यश्री का परिचय देते हुए कहा—आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में हिन्दी साहित्य का बहुत कार्य हुआ है। उनकी दक्षिण यात्रा से हिन्दी के विरोध की आग का शमन हुआ है। दूसरे दिन 'जैन संतों का हिन्दी के विकास में योगदान' इस विषय पर मेरा वक्तव्य हुआ भाषण पूरा होते ही पचासों विदेशी विद्वान् मेरे पास आकर खड़े हो गए। उन्होंने विविध प्रकार की जिज्ञासाएं की, तब संयोजक ने उन्हें कहा—कल दिल्ली भ्रमण का कार्यक्रम है। आप कल अणुव्रत भवन में मुनिश्री से मिल सकेंगे।

सम्मेलन के तीसरे दिन लगभग सौ विदेशी विद्वान् अणुव्रत भवन आए। उन्होंने आगम साहित्य, अणुव्रत साहित्य व अन्य साहित्य को ध्यान से देखा। लगभग दो घंटे तक विविध प्रकार की जिज्ञासाएं की। मुख्यतः जैन दर्शन, जैन साध्वाचार, संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं के संबंध में प्रश्न पूछे। उनका सरल हिन्दी भाषा में समाधान किया गया। समागत विद्वानों ने कहा—आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में हिन्दी साहित्य का इतना कार्य हुआ है, यह जानकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है। अणुव्रत भवन में आज जो हमें अनुभव मिला है, इससे विश्व हिन्दी सम्मेलन में हमारा आना सफल हो गया है।

संस्कृत-विकास के विविध प्रयोग

कुछ लोग संस्कृत को एक वर्ग विशेष की भाषा मानते हैं, कर्मकांडों की भाषा मानते हैं पर उनका यह चिंतन मिथ्या है, भ्रामक है। संस्कृत एक स्थिर और सुगठित भाषा है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा पंचनद से असम तक इसके उपयोग में एकरूपता परिलक्षित होती है। देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालययों में इसका अध्ययन होता है, इसमें विरचित साहित्य पर शोध कार्य होता है। भारत में सहस्राब्दियों से श्रमण संस्कृति और बाह्मण संस्कृति की दो धाराएं प्रवहमान हैं। दोनों ही परम्पराओं के मनीषियों ने सुरभारती के भंडार को समृद्ध बनाया है। उन्होंने सिर्फ धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर ही अपनी लेखनी नहीं चलाई किन्तु, जीवन से जुड़े हुए विविध विषयों पर अपनी प्रतिभा और लेखनी का उपयोग किया।

जैन आगमों की मूल भाषा अर्धमागधी प्राकृत है। उनका व्याख्या साहित्य संस्कृत में है। आगमों के सूक्ष्म रहस्यों को आत्मसात् करने के लिए संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है। जैन आचार्यों ने इसे आगमों के ज्ञान-भंडार की चाबी कहा है। इसलिए उनके मानस में संस्कृत के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हुई। तेरापंथ के चतुर्थ अधिशास्ता श्री जयाचार्य आगमों के मर्मज्ञ थे। उनका जीवन आगमों के अध्ययन और स्वाध्याय में बीता। उन्होंने भगवती जैसे विशाल और दुर्बोध्य पंचमांग का राजस्थानी भाषा में पद्यानुवाद किया। जो राजस्थानी भाषा का विशाल और सारगर्भित ग्रंथ रत्न है। उन्होंने प्रज्ञापना आदि अन्य आगमों का भी पद्यानुवाद किया। आगमों के जलधि का गहरा आलोडन-विलोडन करने के लिए उन्होंने भी संस्कृत का अध्ययन आवश्यक और उपयोगी समझा। पर उस समय की स्थितियां प्रतिकूल थी। कुछ विद्वान लोगों में यह धारणा थी, जैन साधुओं को संस्कृत पढ़ाना सर्प को विष पिलाना है। इसलिए उन्हें कोई संस्कृत

पढ़ाने वाला नहीं मिला। पर जहां चाह है, वहां राह है के अनुसार जयाचार्य को जयपुर में एक विद्यार्थी मिला। वह दिन में संस्कृत पाठशाला में पढ़ता था और रात्रि में जयाचार्य को पढ़ाता था। इस तरह संस्कृत व्याकरण का पंच संधि प्रकरण उन्होंने समझा और उसका राजस्थानी में पद्यानुवाद किया। वह अनुवाद आज भी सुरक्षित है। उस समय धर्मस्थान में प्रकाश की समुचित व्यवस्था नहीं होती थी। पर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जयाचार्य ने तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत का बीजारोपण किया। यह उनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचायक है।

उनके उत्तराधिकारी आचार्यश्री मघवा ने उनके सान्निध्य में ही उस बीज को पल्लवित पुष्पित किया। आचार्यश्री मघवा ने देववाणी में श्लोकों की रचना की। श्रीमज्जयाचार्य उन्हें पंडित कहकर संबोधित करते थे। उनके स्वर्गवास के बाद लगभग दो दशक तक संस्कृत का प्रवाह अवरुद्ध हो गया।

अष्टमाचार्य श्री कालूगणी आचार्यश्री मघवा से दीक्षित थे। उनकी शिक्षाएं और प्रेरणाएं उनके मानस में अंकित थी। उनकी स्मृति से वे भाव-विभोर हो जाते थे। उनके सपनों को सफल बनाना वे अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने संस्कृत के रुके हुए प्रवाह को गतिशील बनाया। आचार्यश्री कालू ने आचार्य पद को सुशोभित करने के बाद भी पट्ट से नीचे उतरकर संस्कृत व्याकरण कंठस्थ की। उनके हाथों से जो बाल मुनि दीक्षित हुए उन्हें संस्कृत के अध्ययन की प्रेरणा दी। इससे धर्मसंघ में संस्कृत का अध्ययन शिक्षा का अभिन्न अंग बन गया।

आचार्यश्री तुलसी का आचार्य काल संस्कृत-शिक्षा का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। आचार्यश्री ने आचार्य बनते ही संस्कृत की सुरसरिता प्रवाहित करने के लिए भगीरथ प्रयास किए। उनका स्वयं का अध्ययन भी चालू था। फिर भी लगभग डेढ़ दशक तक शिष्य-शिष्याओं को संस्कृत का अध्ययन कराने के लिए प्रतिदिन ३-४ घंटे लगाए। वैसे तो आचार्यश्री कालूगणी की विद्यमानता में ही उन्होंने अध्यापन का दायित्व संभाल लिया। उनके मार्गदर्शन में अनेक बाल साधु संस्कृत का अध्ययन करते थे। अध्ययन करने वाले साधुओं की अच्छी संख्या देखकर बहुत से व्यक्ति तुलसी पोशाल कहने लगे। तेरापंथ के प्रारंभिक काल में मुनिश्री हेमराजजी के मार्गदर्शन में भी अनेक बाल मुनि अध्ययन करते थे। उस समय की भाषा में उसे हेम पोशाल कहते थे। उसका अनुसरण करते हुए तुलसी पोशाल का प्रयोग हो गया। दोनों ही पोशालों के

अनेक संत धर्मसंघ के विशिष्ट संत हुए। दोनों ही पोशालों के एक- एक विद्यार्थी आचार्य बने। हेम पोशाल के श्री जयाचार्य और तुलसी पोशाल के आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आचार्य बने। जयाचार्य ने संस्कृत का बीजारोपण किया और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने वटवृक्ष के रूप में उसका विकास किया। जयाचार्य को हेम पोशाल की उपलब्धि कहा जा सकता है, आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को तुलसी पोशाल की फलश्रुति कहा जा सकता है।

आचार्यश्री तुलसी की जिज्ञासा वृत्ति अद्‌भुत थी। कोई भी संस्कृत का विशिष्ट विद्वान मिलता तो वे उससे प्रेरणा ग्रहण करते। मैंने प्रथम चतुर्मास श्रीडूंगरगढ़ किया। वहां दिल्ली से संस्कृत के एक प्रसिद्ध विद्वान आए। संभवतः उनका नाम पंडित चन्द्रशेखरजी था। उनका व्याख्यान के समय संस्कृत में भाषण हुआ। उस वक्तव्य से आचार्यश्री तुलसी बहुत प्रसन्न हुए। व्याख्यान समाप्त होते ही मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) को अपने पास बुलाया और कहा—पं. चन्द्रशेखरजी ने संस्कृत में धाराप्रवाह भाषण दिया। अपने संघ में भी ऐसे वक्ता तैयार होने चाहिए। मुनिश्री ने इसके बाद अभ्यास प्रारंभ कर दिया। चतुर्मास की समाप्ति पर मुनिश्री ने निवेदन किया—अब संस्कृत में वक्तव्य देने में कोई कठिनाई नहीं है। आचार्यप्रवर मुनिश्री के उद्‌गार सुनकर प्रसन्न हुए। श्रीडूंगरगढ़ से विहार कर आचार्यप्रवर मर्यादा-महोत्सव के लिए सरदारशहर पधारे। वहां बहिर्विहारी संत भी आ गए। वहां रात्रि में कई संस्कृत भाषण माला का कार्यक्रम रहा। इससे धर्मसंघ में संस्कृत भाषण शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ। वि.सं. २००६ में आचार्यश्री का चतुर्मास जयपुर हुआ। वहां संस्कृतज्ञ संतों का परस्पर संस्कृत में ही वार्तालाप करने का संकल्प करा दिया।

आचार्यवर की प्रेरणा से संस्कृत भाषा की एक हस्तलिखित पत्रिका जय ज्योति का प्रारंभ हुआ। उसमें साधुओं और साध्वियों की रचनाओं का समावेश होता था। जो अच्छा लिखते उन्हें पुरस्कृत भी करते। इस तरह भाषण के साथ लेखन का भी क्रमशः विकास हो गया। भाषण और लेखन की उन वर्षों में प्रतियोगिताएं भी हुई। एक बार आचार्यश्री तुलसी तारानगर पधारे। वहां संस्कृत सम्मेलन का आयोजन था। उसके अंतर्गत समस्या पूर्ति का कार्यक्रम था। उस कार्यक्रम से प्रेरणा लेकर आचार्यश्री ने धर्मसंघ में समस्या पूर्ति का कार्यक्रम शुरू कर दिया। यह कार्यक्रम शीतकाल में होता था, जो कई वर्षों तक चला। आचार्यश्री की ग्रहणशीलता के ऐसे अनेक उदाहरण हैं। उनका एक ही लक्ष्य था,

संघ में संस्कृत का सर्वांगीण विकास हो।

पंडित रघुनंदन शर्मा संस्कृत के आशु कवि थे। उनके संपर्क से धर्मसंघ में संतों ने आशु कविता में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। वि.सं. २००० में 'ऐकाह्निक शतक' की रचना हुई। उसके बाद एक दिन में पांच सौ, हजार व इग्यारह सौ श्लोक बने। कई विद्वानों ने कहा—आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में संस्कृत का जो विकास हुआ है, उसे देखकर भोज युग का स्मरण हो रहा है।

आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी समाज की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। जब वे आचार्य बने तब एक भी साध्वी पांचवीं कक्षा से अधिक पढ़ी हुई नहीं थी। उन साध्वियों को संस्कृत पढ़ाना कितना कठिन था यह सहजता से समझा जा सकता है। पर आचार्यश्री फौलादी संकल्प के धनी थे। उन्होंने साध्वी संघ की शिक्षा के लिए जो कठोर तपस्या की वह इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज है। वह शब्दों से अवर्ण्य है। अशिक्षित साध्वियों को संस्कृत कोष कंठस्थ कराना, व्याकरण कंठस्थ कराना, और उस के अर्थ समझाना, मेरी दृष्टि में समुद्र तैरने के समान था। पर उसमें भी आचार्यप्रवर ने घंटों-घंटों परिश्रम कर सफलता प्राप्त की। उस तपस्या का परिणाम है आज सौ साध्वियां और समणियां संस्कृत में बोल सकती है, रचना कर सकती है।

आचार्यश्री तुलसी ने पंजाब से कन्याकुमारी तक पदयात्रा की। उस यात्रा में विभिन्न स्थानों पर संस्कृत विद्वान मिले। पूना में तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ व गीर्वाण वाग्वर्धिणी सभा, वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालय तथा मुंबई में भारतीय विद्याभवन में आचार्यश्री तुलसी तथा मुनिश्री नथमलजी के संस्कृत वक्तव्य तथा आशुकवित्व का कार्यक्रम सैकड़ों विद्वानों की उपस्थिति में हुआ। जिसका अविस्मरणीय प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। भारतीय विद्या भवन में कार्यक्रम संपन्न होते ही विद्वानों ने मुनिश्री नथमलजी से पूछा—आपने किस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। मुनिश्री ने कहा—तुलसी विश्वविद्यालय में। विद्वान् यह उत्तर सुनकर विस्मयमग्न हो गए। उन्होंने कहा—हमने तो इस विश्वविद्यालय का नाम ही नहीं सुना है, यह कहां है? तब मुनिश्री ने आचार्यश्री तुलसी की ओर संकेत करते हुए कहा—यह जंगम विश्वविद्यालय सामने खड़ा है। यह सुनते ही जिज्ञासु प्राध्यापक समझ गए और मुस्कराने लग गए।

मनोनुशासनम् : एक अध्ययन

अणुव्रत अनुशास्ता, युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी बीसवीं शताब्दी के एक उत्क्रान्तचेता धर्मनायक के रूप में विख्यात थे। ज्ञान तथा साधना-जीवनोत्सकर्ष के इन दोनों पक्षों को उद्बुद्ध एवं विकसित करने हेतु उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किये। उनकी साधना और तपस्या से निःसन्देह अध्यात्म के क्षेत्र में एक नये युग का अवतरण हुआ।

आचार्य श्री तुलसी ने एक ओर आगम-वाङ्मय तथा आध्यात्मिक साहित्य के संदर्भ में महनीय कार्य किया, वहां दूसरी ओर उन्होंने अणुव्रत अभियान के माध्यम से प्रशस्त जीवनक्रम जन-जन को प्रदान किया, जो जाति, सम्प्रदाय, देश, वर्ण तथा वर्ग भेद से सर्वथा अस्पृष्ट, चरित्र-निर्माण एवं नैतिक जागरण का एक रचनात्मक एवं ठोस कार्यक्रम है।

आज के तथाकथित समृद्ध और वैभव-विलासित जीवन की यह विचित्र विडम्बना है कि मानव भौतिक दृष्टि से सब कुछ कर पा लेने पर भी अपने को खोया हुआ सा पाता है। उसके जीवन में शांति नहीं है। युगद्रष्टा आचार्य श्री तुलसी का इस ओर ध्यान गये बिना कैसे रहता। जन-जीवन की शांति व अन्तःस्थिरता को निगले जा रही इस विडम्बना-पिशाचिनी से मुक्ति दिलाने हेतु उन्होंने योग तथा ध्यान का अभिनव संदेश दिया। जिसके विकास एवं संवर्धन में उनके उत्तराधिकारी प्रबुद्ध मनीषी आचार्य श्री महाप्रज्ञ का अनुपम योगदान है। 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें। यह आगम-भाषित वह मूल-मंत्र है, जिसके आधार पर आचार्य द्वय के उद्बुद्ध चिन्तन, और अन्वेषण से प्रेक्षाध्यान के रूप में महान् साधन-पद्धति का विकास हुआ।

साधना, आचार एवं कर्म के लिए तत्त्वज्ञान की पृष्ठभूमि आवश्यक होती है। यही कारण है, प्रेक्षाध्यान, जो जैन-योग का एक सर्वतोभद्र ओजस्वी रूप

है, के अभ्यास-क्रम को उद्बोधित करने से पूर्व ही आचार्य श्री तुलसी ने जैन-योग पर 'मनोनुशासनम्' के रूप में एक पुस्तक की रचना की। उसका प्रथम प्रकाशन मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) द्वारा किये गऐ हिन्दी अनुवाद के साथ विक्रम सं. २०११ में आचार्यप्रवर के धवल समारोह की ऐतिहासिक बेला में हुआ। उस लघुकाय, संक्षिप्त पुस्तिका ने जैन योग के अभ्यासार्थियों एवं अध्येताओं को नवोद्बोधन दिया।

सन १९७८ में मनोनुशासन का संशोधित संस्करण युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा निर्मित महत्वपूर्ण व्याख्या के साथ प्रकाशित हुआ। इस चिर-प्रतीक्षित ज्ञानोपहार का व्यापक स्वागत हुआ। विद्वानवर्ग और विद्यार्थी दोनों ने मनोनुशासन का समादार किया। प्राचीन शैली तथा अर्वाचीन परिवेश में वस्तुतः यह जैन-योग पर आचार्यवर की एक असामान्य कृति है।

मनोनुशासनम् भारतीय प्राचीन दार्शनिक लेखकों द्वारा अपनाई गई सूत्रात्मक शैली में संस्कृत में संग्रहित है। अति संक्षिप्त शब्द कलेवर द्वारा गहन, विस्तृत एवं व्यापक भावों का संचयन व प्रकाशन करने की अनुपम क्षमता इस शैली में है। सूत्र के लक्षण में परम्परा से कहा जाता रहा है—

'जिसके थोड़े अक्षर हों, असंदिग्ध-संदेह-रहित विवेचन हो जो सारयुक्त हो, जो सर्वतोमुख-व्यापक अर्थ लिये हो, जिसकी अभिव्यंजना अवरोध-वर्जित हो व जो दोष-शून्य हो, सूत्रवेता उसे सूत्र कहते हैं।'

सूत्र की यह परिभाषा प्रस्तुत ग्रन्थ पर सर्वथा एवं सफल सिद्ध होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ सात प्रकरणों में विभक्त है।

प्रथम प्रकरण में २३ सूत्र हैं, जिनमें ध्येय, मन, इन्द्रिय, अतीन्द्रिय-ज्ञान, योग, अन्तःशोधन, निरोध, आहार-शुद्धि, काय-शुद्धि तथा मनःशुद्धि आदि विषय बड़े स्पष्ट एवं हृदयग्राही रूप में व्याख्यात किए गये हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में योग की परिभाषा करते हुए कहा गया है-

'मन, वाणी, शरीर श्वासोच्छ्वास, इन्द्रिय तथा आहार का निरोध योग है।'

योग को इस परिभाषा में नवीनता और मौलिकता प्रतिबिम्बित होती है।

साधक निरोध की स्थिति का विकास सहसा एक साथ नहीं कर सकता। विकास-शोधन करता हुआ क्रमशः योग-मार्ग पर आगे बढ़ता है। इसलिए ग्रन्थकार ने निरोध के पहले शोधन को आवश्यक माना है। अतः दो पृथक सूत्रों द्वारा उन्होंने उस संबंध में संकेत किया है।

इस प्रकार मन, वाणी, देह, श्वासोच्छ्वास आदि के शोधन द्वारा प्रारम्भ होने वाला योगाभ्यास का साधनाक्रम अन्ततः अयोग या योगनिरोध में परिसमाप्त होता है।

संवर, गुप्ति, निरोध और निवृत्ति योग (अध्यात्म-योग) के पर्यायवाची है।

ग्रन्थकार ने मन को परिशोधित एवं नियमित करने हेतु बहुत संक्षिप्त शब्दावली में जो मार्ग सुझाया है, वह साधकों द्वारा आत्मसात् करने योग्य है। उन्होंने जो लिखा है, उसका भाव है-

'मनःशुद्धि के लिए सबसे पहले संकल्प की दृढ़ता चाहिए। दुर्बल संकल्प से कुछ नहीं सधता। जब विकार-हेतु उपस्थित होते हैं, संकल्प टूट जाता है। क्योंकि वह सशक्त नहीं होता। साधक गिर जाता है। सत्संकल्प के लिए मन को कहीं एक सत् लक्ष्य के साथ जोड़ना होगा-एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ।

आचार्यवर महान् शब्द-शिल्पी थे। गहन, गंभीर विषय, सूत्रात्मक संक्षिप्त निरूपरण-सरणि—यह सब होते हुए उन्होंने अत्यन्त विशद, सरल तथा बोधगम्य शैली में तत्त्व-निरूपण किया है। उदाहरणार्थ-मुक्ति की परिभाषा कितने सरल तथा प्रसादपूर्ण शब्दों में की गई है—'स्वरूपोपलब्धिर्मुक्तिः'—अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेना मुक्ति है।

इस प्रकरण में व्याख्याकार ने पर्याप्तियों का शक्ति-स्त्रोत तथा प्राणों का शक्ति-केन्द्र के रूप में जो वैज्ञानिक विश्लेषण किया है,वह बहुत ही बोधप्रद है।

दूसरे प्रकरण में २१ सूत्र हैं, जिनमें मन का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। मन ही जीवन की क्रिया-प्रक्रिया-कर्म, सुकर्म, विकर्म, अकर्म सबका मुख्य आधार है। 'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' मन ही मनुष्यों के बन्ध

और मोक्ष का कारण है-यह जो कहा गया है, सर्वथा यथार्थ हैं। मन को पकड़ पाना, नियन्त्रित कर पाना कठिन है। इसका नियंत्रण वास्तव में 'वायोरिव सुदुष्करम' है।

इसी प्रकरण में मूढ़, विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट, सुलीन तथा निरूद्ध मन की इन छह अवस्थाओं का भी सुन्दर विवेचन हुआ है।

आगे छह सूत्रों में मनोजय का मार्ग बतलाया गया है। लिखा है-

'ज्ञान (आत्म तथा पर के भेद-विज्ञान) एवं (भौतिक वैभव आदि के प्रति) वैराग्य द्वारा मन का निरोध होता है। ध्येय के प्रति अत्यन्त श्रद्धा, तन्मयता और समर्पण से मन की पकड़ छूटती है। देह का शिथिलीकरण और ध्यान मनोजय में सहायक होते है।

गुरू के उपदेश तथा अत्यधिक प्रयत्न से ये साधन प्राप्त होते हैं।

तीसरे प्रकरण में सत्ताईस सूत्र हैं। इनमें ध्यान साधक के लिए उपयोगी आहार-विहार आदि क्रियानुष्ठान, आसन, कायोत्सर्ग, मुद्रा, प्रतिसंलीनता भावना, स्वाध्याय आदि का विशद विवेचन किया गया है।

इस प्रकरण में दिया गया ध्यान का लक्षण वस्ताव में बोधगम्य व्यावहारिक तथा साथ ही पारमार्थिक भी है। लिखा है-

'मन का एकाग्र चिन्तन अथवा योग निरोध—कायिक, वाचिक, मानसिक प्रवृत्तियों का संचरण-अवरोध-ध्यान है।'

एकाग्र चिन्तन से ध्यान की भूमिका प्रारम्भ होती है तथा योग-विरोध में उसका परिसमापन होता है, जो योग की सर्वोत्तम दशा या चरम फल-निष्पत्ति है।

जैन आगम-साहित्य में संकेतित तथा तत्संबद्ध आसनों का प्रस्तुत प्रकरण में विवेचन है, जो विस्तृत व्याख्या के कारण साधकों के लिए बहुत उपयोगी हो गया है।

ध्यानसिद्धि, शारीरिक स्वस्थता, नाड़ी-संस्थान-शुद्धि, पाचन संस्थान-शुद्धि, वायु-शुद्धि तथा उत्सर्ग-शुद्धि के संदर्भ में विशेष रूप से उपयोगी आसनों का बड़े वैज्ञानिक ढंग से विभाजन तथा विश्लेषण किया गया है, जो

योगाभ्यासियों के लिए बहुत लाभप्रद है।

चौथे प्रकरण में चौतीस सूत्र हैं। इसमें ध्यान की योग्यता, ध्यान-मुद्रा, ध्यान-स्थल, ध्यानोचित आसन, सालम्बन, निरालम्बन, पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत आदि ध्यान के भेद, पार्थिवी, यान्गेची, मारूती व वारूणी धारणा, समाधि आदि का विशद विवेचन है।

ग्रन्थकार एवं व्याख्याकार का चिन्तन बहुत ही उपयोगितावादी तथा समन्वयवादी है। 'युक्तियुक्तमुक्तं बालादपि ग्राह्यम्'—युक्ति-युक्त बात यदि बालक द्वारा भी कहीं गई हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए—के अनुसार उन्हें हितकर तथा लाभप्रद तत्त्व कहीं से भी लेने में हिचकिचाहट नहीं है। यही कारण है, इस प्रकरण में व्याख्या के अंतर्गत मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्त्रार नामक चक्रों का भी विश्लेषण किया गया है, जो विशेषतः हठयोग से संबद्ध है। चक्रों के स्थान, दल, वर्ण, बीजाक्षर, ज्योति, फल आदि का इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना—इन तीनों नाड़ियों का तथा इनसे संबद्ध अन्यान्य विषयों का बहुत ही सरल व बोधगम्य शब्दों में विवेचन किया गया है, जिससे सामान्य पाठक तथा अभ्यासी भी लाभान्वित हो सकते है।

व्याख्या के अन्तर्गत लेश्या का आधुनिक रंग-विज्ञान के साथ समीक्षात्मक दृष्टि से विशद विवेचन हुआ है। जिज्ञासुवृन्द को इसे विशेष रूप से हृदयंगम करना चाहिए।

पांचवें प्रकरण में सत्ताईस सूत्र हैं। इसमें प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान-इन पांच वायुओं का विस्तृत है। पांच वायुओं का विचरण-स्थान, ध्यान-बीच, वायु-जय की प्रक्रिया जेतव्य वायु पर मन का केन्द्रीकरण, वायु-जय के लाभ आदि का विशद विश्लेषण किया गया है। बताया गया है कि प्राणवायु के जीतने से जठराग्नि की प्रबलता, देह-लाघव, अपान व समान वायु के जीत लेने से व्रण-संरोहण, अस्थि-संधान, जठराग्नि प्राबल्य, मल-मूत्र का अल्पत्व, व्याधिजय, उदान वायु के जीत लेने से कीचड़, कंटक आदि जनित बाधा का अभाव तथा व्यान वायु के जय के ताप एवं पीड़ा का अभाव और नैरोग्य-ये फलित होते है।

योग में वाम स्वर के चन्द्र-नाड़ी तथ दक्षिण-स्वर को सूर्य-नाड़ी कहा गया है। मन की स्थिरता साधने के संदर्भ में प्रस्तुत प्रकरण में बताया गया है कि चन्द्र-नाड़ी से वायु को खींचकर पैरों के अंगूठों तक ले जाना, फिर उन्नयन करना-ऊपर लाना, फिर नीचे ले जाना—इस प्रकार अभ्यास करने के मन स्थिर होता है।

वायु संबंधी और भी अनेक उपयोगी विषयों का बड़ा सूक्ष्म विवेचन यहां हुआ है।

छठे प्रकरण में तीस सूत्र हैं, इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह-इन पांच महाव्रतों तथा साधक की चर्या का वर्णन है। जैन दर्शन में स्वीकृत महाव्रत पातंजल योग के आठ अंगों में पहले अंग यम के समकक्ष है।

व्याख्याकार ने ब्रह्मचर्य महाव्रत के वर्णन के अंतर्गत शरीर-विज्ञान की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है। पीयूष ग्रन्थि, कण्ठमणि ग्रन्थि, वृषण ग्रन्थि, पेंक्रियाग्रन्थि, एड्रीनल, पैराथायराइड ग्रन्थि, तृतीय नेत्र ग्रन्थि, यौवनलुप्त ग्रन्थि इत्यादि का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन करते हुए काम-विजय के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है, जो प्रत्येक साधक के लिए अवश्य पठनीय है।

क्रोध, लोभ, भय तथा हास्य का वर्जन, क्षमा, मृदुता, ऋजुता, शुचिता, संयम, तप, त्याग, अकृत्रिमता आदि का परिपालन, अभ्यास प्रभृति विषयों पर भी, जो साधना के मुख्य अंग हैं, प्रकाश डाला गया है।

सातवें प्रकरण में पन्द्रह सूत्र हैं। इसमें प्रतिभा (कायोत्सर्ग के विशेष विधिक्रम) जिनकल्प (साधना के उत्कृष्ट विधिक्रम) तप, क्षुधाजय, निद्राजय, भय-विजय, परीषह-विजय आदि की चर्चा है।

यहां तप, सत्व, सूत्र, एकत्व तथा बल नामक पांच भावनाओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है, जो प्रतिमा तथा जिनकल्प में साधित होती है। बतलाया गया है कि तप भावना द्वारा क्षुधाजय, कायोत्सर्ग के विविध क्रियानुष्ठानों पर आधृत सत्व-भावना से निद्रा-जय, भय-जय, सूत्र-भावना में काल-ज्ञान, एकत्व-भावना से शरीर एवं अन्यान्य उपकरणों से आत्मा का

भिन्नत्व निर्लेप-भाव तथा बल-भावना से परीषह-जय व उपसर्ग-जय सधते हैं।

ग्रंथ के अन्त में छः परिशिष्ट हैं, जिनमें क्रमशः प्रेक्षा की पांच भूमिकाएं, प्रेक्षा के आधारभूत तत्त्व, अभ्यास क्रम, मर्मस्थान और योग विद्या के चक्र, शब्दकोश तथा मूलकृति का समावेश है।

प्रथम परिशिष्ट में प्रेक्षा की पांच भूमिकाओं के अंतर्गत श्वास-प्रेक्षा, प्रकंपन-प्रेक्षा, अनिमेष-प्रेक्षा, धर्म-प्रेक्षा, समवृत्ति-श्वास, सहज-श्वास, श्वास-संयम, अनित्य-अनुप्रेक्षा, एकत्व-अनुप्रेक्षा, अशरण-अनुप्रेक्षा, मैत्री-अनुप्रेक्षा, अभय-अनुप्रेक्षा, अर्हं भावना, हुं भावना, ऐं भावना आदि का मार्मिक विश्लेषण है।

दूसरे परिशिष्ट में प्रेक्षा के आधार-भूत तत्त्वों के अंतर्गत कायोत्सर्ग, अप्रमाद, शरीर-प्रेक्षा, वर्तमान-क्षण-प्रेक्षा, समता, संकल्प-शक्ति, एकाग्रता, अनुप्रेक्षा और भावना आदि विषयों पर गहराई से चर्चा की गई है।

तीसरे परिशिष्ट में अभ्यास क्रम के अंतर्गत ध्यान-साधना की भूमिकाएं, चित्तलय का सहज अभ्यास, भेद-ज्ञान का अभ्यास आदि का विवेचन है।

चौथे परिशिष्ट में देह के मर्म-स्थानों, योग-विद्या में अभिमत देह स्थिति, चक्रों का वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष स्पष्टीकरण है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मनोनुशासनम् जैन योग के पारम्परिक दृष्टिकोण अधुनातन विकसित चिन्तन तथा वैज्ञानिक ऊहापोह के साथ अपनी कोटि की अनुपम कृति है जिसके लिए ग्रंथकार तथा व्याख्याकार सर्वथा अभिवन्दनीय हैं।

क्रांतिकारी अभियान

आडम्बर, प्रदर्शन एवं कुरुढ़ियों के चक्रव्यूह को भेदकर समाज को नव निर्माण की दिशा में आगे बढ़ना जरूरी होता है। नव निर्माण सामाजिक मूल्यों का होना चाहिए। जो परम्पराएं समाज के लिए बोझ बन चली है उन्हें समाज के हित में त्यागना ही नया मोड़ है। आचार्य श्री तुलसी एक यथार्थदर्शी और क्रांतिकारी धर्माचार्य थे। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों की शुद्धि और स्वस्थता पर बल दिया। उन्होंने सोचा-जब तक व्यर्थ की रूढ़ियों के कीचड़ से मुक्ति नहीं होगी तब तक व्यक्ति शांति और संयम की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकेगा। उन्होंने क्रांतिकारी भाषा में इस ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया। उनके वर्षो के प्रयत्न से नए मोड़ अभियान की एक सुन्दर भूमिका का निर्माण हुआ।

नए मोड़ अभियान का व्यवस्थित प्रारंभ वीर भूमि मेवाड़ में तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर हुआ। आचार्यवर का उस समय मेवाड़ में प्रवेश राणकपुरजी होते हुए सायरा के मार्ग से हुआ। वहां मेवाड़ के श्रावक समाज की ओर से स्वागत समारोह का विशाल और भव्य आयोजन किया गया। जिसमें सभी अंचलों के हजारों श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति थी। इस कार्यक्रम में द्विशताब्दी समारोह व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री हीरालाल जी कोठारी व महामंत्री अणुव्रत महारथी श्री देवेन्द्र भाई कर्णावट आदि अनेक वक्ताओं ने श्रद्धा भरे उद्गारों से आचार्य प्रवर का स्वागत किया तथा निवेदन किया—आपका जो भी दिशा निर्देश मिलेगा उसका हम अनुसरण करेंगे। आचार्यवर ने अपने प्रेरणा दायक उद्बोधन में कहा-पिछले वर्ष कलकत्ता चतुर्मास में द्विशताब्दी समारोह के लिए तेरापंथ की जन्म भूमि मेवाड़ की इस ऐतिहासिक धरती पर आने का मैंने संकल्प किया था। लगभग तीन हजार

किलोमीटर का पाद विहार करने के बाद आज मेरा वह संकल्प पूरा हो गया है, इसकी मुझे प्रसन्नता है। द्विशताब्दी समारोह केवल आयोजनों तक सीमित नहीं हो। इस वीर भूमि पर आचार्य श्री भिक्षु ने धर्म क्रांति का बिगुल बजाया था। जिसका संदेश आज भारत में ही नहीं विदेशों में भी गूंज रहा है। इस पुनीत अवसर पर सामाजिक क्रांति का एक और बिगुल बजने की आवश्यकता है। जिससे जीवन को भारी और तनाव ग्रस्त बनाने वाली कुरूढ़ियों के जाल से समाज को मुक्त किया जा सके और सादगी व संयमप्रधान जीवन का विकास हो सके। जन्म, विवाह और मृत्यु के प्रसंगों पर जो देखा देखी आडम्बर और प्रदर्शन बढ़ रहे है, उनका परित्याग कर एक नए मोड़ की धारा को आगे बढ़ानी चाहिए। द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर मेवाड़ के प्रमुख तेरापंथी श्रावक मिलकर एक आचार संहिता बनाए और उसे हर गांव के श्रावक क्रियान्वित करने का संकल्प करे।

आचार्य श्री तुलसी के उस वक्तव्य से सारे मेवाड़ में नए मोड़ के अभियान का स्वर जन-जन के मुख पर गूंज उठा। सायरा के बाद जहां-जहां आचार्यवर का पदार्पण हुआ, वहां अणुव्रत के साथ नए मोड़ के अभियान का संदेश प्रदान किया। आचार्य श्री के मेवाड़ पदार्पण के पूर्व लगभग ३-४ वर्ष मुझे वहां कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। जब मैंने मेवाड़ के लिए विहार किया तब मुझे आचार्य प्रवर ने अणुव्रत के साथ मृत्यु भोज आदि रूढ़ियों से मुक्ति की प्रेरणा देने का निर्देश दिया। उस निर्देश के अनुसार मैंने मेवाड़ के सभी अंचलों में भ्रमण कर अणुव्रत और रूढ़ि उन्मूलन का व्यापक कार्य किया। जिससे विभिन्न जातियों और संप्रदायों के लोगों से मेरा व्यापक संपर्क बना। जैन-अजैन हजारों व्यक्तियों ने नशा, दुर्व्यसन और मृत्युभोज आदि कुरूढ़ियों का परित्याग किया। इससे तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह और नए मोड़ अभियान की पृष्टभूमि निर्मित हुई। तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह समिति के महामंत्री श्री देवेन्द्र भाई कर्णावट ने ''मैं साक्षी हूं'' इस शीर्षक से अपने अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—''यह भी स्मरणीय है कि द्विशताब्दी क्षेत्र में तीन चातुर्मास (वि.सं. २०१४, १५, १६) कर मुनिश्री राकेश कुमार जी ने न सिर्फ समारोह की संभावना को खोजा वरन् उसके अनुरूप वातावरण का भी निर्माण किया। युवकों में नवसंचार करते हुए सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरूद्ध

जन-जन को आह्वान किया एवं तदर्थ युवकों को मोर्चा लेने के लिए तैयार किया। उस समय मुनिश्री राकेश कुमार जी की सभाओं में सैकड़ों की उपस्थिति रहती थी और उनके वक्तव्य नया जोश पैदा करते थे। मेवाड़ में व्याप्त सामाजिक तड़ों को मिटाने में मुनिश्री राकेश कुमार जी ने अथक श्रम किया और वे तड़ा मिटाने वाले महाराज के रूप में जाने-पहचाने जाने लगे। समाज नया मोड़ ले इस दिशा में मुनिश्री राकेश कुमार जी ने उर्वर भूमिका तैयार की। वह एक युग था, साक्षी हूँ मैं उस युग का और हजारों लोग साक्षी हैं।''

उस समय मेवाड़ का श्रावक समाज जितना श्रद्धालु था उतना ही शिक्षा के अभाव में रूढ़िवादी था। समाज में प्रचलित प्रथाओं से मुक्त होना वहां के लोगों के लिए बहुत कठिन था, मैंने वहा के दीर्घकालीन प्रवास में इसका निकटता से अनुभव किया। पर आचार्य श्री तुलसी के अतिशयधारी व्यक्तित्व का यह चमत्कार था कि नए मोड़ के क्रांतिकारी अभियान के सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हुए। आचार्यवर ने कहा-जब तब सामाजिक जीवन कुरूढ़ियों के भार से हल्का नहीं होगा तब तक संयम और सादगी प्रधान जीवन शैली का विकास नहीं हो सकता। आचार्यप्रवर के क्रांतिकारी उपदेशों से प्रेरणा प्राप्त कर राजनगर चतुर्मास में मेवाड़ के प्रमुख श्रावकों और कार्यकत्ताओं ने मिलकर एक नए मोड़ की आचार संहिता बनाई और उसका गांव-गांव में व्यापक प्रचार किया। उसके बाद आचार्यप्रवर जहां-जहां पधारे वहां के श्रावकों ने नए मोड़ अभियान का अनुसरण करने का संकल्प ग्रहण किया। इस अभियान को आगे बढ़ाने में साध्वी प्रमुखाश्री लाडांजी का उल्लेखनीय योगदान रहा। उन्होंने हजारों घरों में जाकर लोगों को रूढ़ि मुक्त जीवन का महत्त्व समझाया और उन्हें संकल्प बद्ध किया।

आचार्यवर ने नए मोड़ के साथ नारी जागरण पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने कहा—''नारी परिवार की धुरी है। जब तक उसमें आत्मविश्वास और स्वाबलम्बन की भावना का जागरण नहीं होगा तब तक स्वस्थ परिवार और समाज का निर्माण नहीं हो सकता। पर्दा प्रथा महिला समाज के विकास में बाधक है।'' उनके इन विचारों का कुछ लोगों ने विरोध भी किया। उन्होंने प्रतिवाद में कहा—''आचार्य श्री! आज के युग में अनुशासन हीनता वैसे ही

बहुत पनप रही है। यदि पर्दा नहीं रहेगा तो लज्जा का जो थोड़ा संस्कार बचा है वह भी खत्म हो जाएगा।'' आचार्यवर ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा—''लज्जा और शर्म का संबंध पर्दे से नहीं, अपने विवेक और अनुशासन से है। मैंने भारत के अधिकतर राज्यों की यात्रा की है पर राजस्थान के बाहर पर्दा बहुत कम है। वहां की महिलाओं में भी लज्जा, शर्म और शालीनता का संस्कार यहां से कम नहीं है।'' नए मोड़ अभियान का संदेश द्रुत गति से सारे भारत में फैल गया। द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर स्थान-स्थान पर महिलाओं ने पर्दे का त्याग किया। आचार्यप्रवर को नए मोड़ अभियान के कारण तीव्र विरोध को झेलना पड़ा। पुराने संस्कारों के लोगों ने उन पर नाना प्रकार के आक्षेप-प्रत्याक्षेप किए। आज महिला समाज में पुरूषों के समान जो कार्यशक्ति, आत्मविश्वास और संकल्पबल दृष्टिगोचर हो रहा है यह आचार्यवर के क्रांतिकारी साहसिक चिंतन और मार्गदर्शन का परिणाम है। जो पर्दाप्रथा निवारण के विरोधी थे आज वे भी महिलाओं का विकास देखकर आचार्यप्रवर के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक है।

नारी जागृति अभियान के अन्तर्गत विधवा महिलाओं की ओर आचार्यवर ने विशेष रूप से ध्यान दिया। कभी संसार से पति पहले विदा हो जाता है, कभी पत्नी पहले विदा हो जाती है। यह नियति का संयोग होता है। पुरूष विधुर होता तो समाज में उसके साथ कोई भेदभाव नहीं होता था पर पत्नी विधवा होती तो उसे कई प्रकार की कठिनाइयां झेलनी पड़ती थी। कई स्थानों पर लगभग १२ महिनों तक मकान के किसी कोने में बिठाया जाता था। उसके छोटे बच्चों को भी उसके पास नहीं जाने दिया जाता था। उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। एक बार किसी गांव से आचार्य श्री का विहार हो रहा था, सामने एक विधवा बहिन खड़ी थी। गांव वालों ने उसे पीछे कर दिया। उसके सामने आने से विहार में अपशुकन हो जाता ऐसी उनकी धारणा थी। आचार्य प्रवर को इस घटना की जानकारी हो गई। उन्होंने उसी समय वहां के प्रमुख श्रावकों को उपालंभ दिया तथा उस विधवा बहिन को आगे दर्शन करने का आदेश दिया। इस तरह की अनेक घटनाएं घटित हुई। एक गांव के लोगों ने किसी बहिन को दर्शन देने के लिए आचार्य प्रवर से निवेदन किया। आचार्यवर उसके घर तक पधार गए। वहां मकान के भीतर

पधारने के पहले पूछा—क्या बहिन अस्वस्थ है? लोगों ने कहा—उसके पति का देहान्त हुआ है इसलिए वह बाहर नहीं निकलती। आचार्य श्री ने कहा—मैं इस रूढ़ि को ठीक नहीं समझता। आपको बहिन को बाहर दर्शन कराना चाहिए। आचार्यप्रवर का इंगित पाकर बहिन को बाहर दर्शन कराया। नए मोड़ अभियान का परिणाम है कि आज विधवा बहिनों के प्रति समाज का दृष्टिकोण काफी बदल गया है।

मेवाड़ तथा अन्य प्रदेशों में विधवा काले वस्त्र धारण करती थी, राजनगर चतुर्मास में आचार्यवर ने इस विषय पर अपनी सीमा में उपदेश दिया। बहुत थोड़े समय में वहां सैकड़ों बहिनों ने उन काले वस्त्रों की रूढ़ि का परित्याग कर दिया।

आज फिर से एक और नए मोड़ का आह्वान जरूरी है, जिससे इस अभियान में आई हुई मंदता और मंथरता दूर हो सके। ''सादा जीवन उच्च विचार मानव जीवन का श्रृंगार'' हल है हलकापन जीवन का'' बदले युग की धारा अणुव्रतों के द्वारा'' जैसे आचार्य प्रवर के प्रिय उद्घोष जन-जन के मुख पर पुनः मुखरित हो। वर्तमान युग में पुरानी रूढ़ियों के स्थान पर अनेक नई रूढ़ियों ने जन्म लिया है। उनसे समाज की मुक्ति जरूरी है। तभी आचार्य श्री तुलसी के सपनों के अनुसार स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है। धन एक शक्ति है, उसका समाज के हित में सदुपयोग भी हो सकता है और दुरूपयोग भी हो सकता है। आज धन का उपयोग आडंबर और प्रदर्शन में बहुत हो रहा है, इससे समाज में नाना प्रकार की विकृत परम्पराएं पैदा हो रही है। इस दृष्टिकोण में परिर्वतन होने से ही नया मोड़ अभियान सफल हो सकेगा।

सरकारी मुद्रणालय में

ई. सं. १९६७ में आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास अहमदाबाद था और मेरा मुंबई था। मुंबई से एक स्पेशल ट्रेन के रूप में श्रावकों के विशाल समूह ने दर्शन किए और मुंबई में मर्यादा महोत्सव कराने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने दक्षिण यात्रा के मार्ग में मुंबई में मर्यादा महोत्सव करने की स्वीकृति प्रदान की। हम लोग आचार्य श्री के प्रवास के लिए उचित स्थान की खोज में संलग्न थे। आचार्य श्री का बड़ौदा तक पधारना हो गया किन्तु शहर के बीच छोटी-मोटी धर्मशाला और वाड़ियों के अलावा कोई भी उचित स्थान ध्यान में नहीं आया। इस समस्या को लेकर मैं और मेरे साथी संत काफी चिन्तित थे। आचार्य श्री के अनुरूप अगर स्थान की व्यवस्था न हो तो मुंबई पधारने का सही उपयोग सम्भव नहीं था। स्थान पर विचार करते-करते हम लोगों का ध्यान चौपाटी में नवनिर्मित सरकारी मुद्रणालय (प्रिंटिंग प्रेस) के विशाल भवन की ओर गया। इतने लम्बे समय तक उसका प्राप्त होना कठिन प्रतीत हो रहा था। जब उस विभाग के मंत्री मधुसूदन वेराले से मैंने बातचीत की तब उन्होंने कहा कि यह बिल्कुल असंभव है। किसी भी सरकारी भवन में एक सम्प्रदाय के आचार्य को ठहरने की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसा करने से विधान सभा में विपक्ष की पार्टियां हमें टिकने नहीं देगी। फिर भी मैंने सोचा, एक बार इस विषय में मुख्यमंत्री बी.पी. नाईक से अवश्य बात करना चाहिए। मुख्यमंत्री बी.पी. नाईक से पिछले चार वर्ष में मुंबई रहते हुए बहुत गहरा सम्बन्ध बन गया था। वे मुंबई में हुए अणुव्रत के कार्य से अत्यन्त प्रभावित थे। वह संभवतः दिसम्बर का महीना था, महाराष्ट्र विधान सभा का शीतकालीन अधिवेशन नागपुर में चालू था। मुख्यमंत्री नागपुर गये हुए थे। मैंने इस संबंध में जानकारी लेनी शुरू की मुख्यमंत्री मुंबई कब आ रहे हैं? आचार्य श्री सूरत के आस-पास पधार गये

थे। तब तक जगह की कोई समुचित व्यवस्था ध्यान में नहीं आयी थी।

जिस दिन मुख्यमंत्री नाईक मुंबई आये, उस दिन मैं मैरिनड्राइव स्थित अणुव्रत सभागार से चलकर बालकेश्वर स्थित उनके निवास स्थान पर पहुंचा। मुख्यमंत्री के पास उस समय जनता की बहुत भीड़ थी। मुझे देखते ही वे मेरे पास आए। भीड़ को छोड़कर अंदर लेकर गए। मैंने उनकी व्यस्तता को देखते हुए शीघ्र मूल प्रंसग शुरू किया। मैंने कहा—नाईकजी! आज एक जरूरी काम के लिए आया हूं। उन्होंने कहा-कहिये क्या काम है। वे हिन्दी अच्छी बोलते और समझते थे। मैंने कहा, आपको पता है, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी पदयात्रा करते हुए मुंबई आ रहे हैं। उनके ठहरने के लिए समुद्र के पास हमें समुचित स्थान की आवश्यकता है। अभी जो सरकारी मुद्रणालय का नया भवन बना है उसमें कोई काम नहीं चल रहा है, भवन खाली पड़ा है। वह सब दृष्टियों से आचार्य श्री के ठहरने के लिए उपयुक्त है। उस स्थान के लिए आपकी इजाजत जरूरी है। उन्होंने कहा, अगर अभी कोई काम चालू नहीं हुआ तो आचार्य श्री के ठहरने के लिए वह स्थान आप उपयोग में ले सकते हैं। दो ही क्षण में उनका यह उत्तर सुनकर मैं एक तरह से भावविभोर जैसा हो गया। उनको निर्णय करने में बिल्कुल देरी नहीं लगी। उन्होंने कहा—मैं दोपहर में सचिवालय जाऊंगा आप अपने कार्यकर्ताओं को वहां भेज देना। मैं सम्बन्धित अधिकारियों से लिखित परमिशन दिला दूंगा। आप निश्चिन्त रहें।

मुख्यमंत्री के इस निर्णय पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। मैं खुद यह देखकर आश्चर्यचकित था कि जिस महाराष्ट्र में तेरापंथ धर्मसंघ की कोई विशेष राजनैतिक, सामाजिक शक्ति नहीं है, फिर भी उस संघ के एक आचार्य के लिए मुख्यमंत्री ने इतना जल्दी यह निर्णय कैसे किया। मैंने उठते-उठते फिर उनसे कहा-अगर विधानसभा में विपक्षी लोग आपको परेशान करेंगे तो? उन्होंने कहा-आप इसकी चिन्ता न करें। मैंने सोच-विचार कर निर्णय किया है। जब आचार्य विनोबा भावे के लिए सरकारी सुविधाएं जुटा सकते हैं तो आचार्य श्री तुलसी के लिए क्यों नहीं कर सकते? आचार्य श्री तुलसी वहां रह कर अणुव्रत के द्वारा नैतिक जागरण का ही कार्य करेंगे, यह तो हमारे लिए खुशी का विषय है। दोपहर में कार्यकर्ता सचिवालय गये और भवन के लिए लिखित

परमिशन प्राप्त हो गई। कई दिनों से मुंबई के कार्यकर्ताओं के लिए जो चिंता का विषय हो रहा था, उसका समाधान सहजता से हो गया। मेरे विचार से अणुव्रत के इतिहास में मुख्यमंत्री श्री नाईक ने जिस कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया, ऐसे उदाहरण विरले हैं।

आचार्य श्री के स्वागत की तारिख जब निश्चित हुई तो उन्होंने सहर्ष उसमें सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की। दो-चार दिन पहले उनको सूचना मिली कि रविवार के स्वागत के दिन उन्हें कांग्रेस की मीटिंग के लिए हैदराबाद जाना पड़ेगा। उन्होंने स्वतः प्रेरित होकर शनिवार के दिन स्वागत समारोह रखने का सुझाव रखा। वे उसमें सम्मिलित ही नहीं हुए बल्कि भक्तिपूर्वक आचार्य श्री के स्वागत में विचार प्रकट किये। उन्होंने अपने भाषण में कहा-देश में साधु-संन्यासी बहुत यात्रा करते हैं पर, उनका लक्ष्य अपने पंथ-मजहब का प्रचार करना है। आचार्य श्री तुलसी मानवतावादी धर्माचार्य हैं। वे राष्ट्र में एकता और नैतिकता के संदेश को आगे बढ़ा रहे हैं। मुंबई आगमन पर मैं इनका राज्य की ओर से हार्दिक स्वागत करता हूं। स्वागत कार्यक्रत में विधान सभा अध्यक्ष टी.एस.भारदे, विधान परिषद् अध्यक्ष वी.एस. पागे तथा उपशिक्षा मंत्री डॉ. कैलाश एन.एन. व अनेक प्रमुख नागरिकजनों के वक्तव्य हुए। आचार्य श्री ने अणुव्रत के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उपसंहार में कहा-मुंबई में रहकर मुनि राकेशकुमार ने बहुत अच्छा कार्य किया है। हर क्षेत्र के लोगों से व्यापक संपर्क बनाया है। आज का कार्यक्रम इसका प्रमाण है। उसके परिश्रम से यहां अणुव्रत का ऐतिहासिक कार्य हुआ है।

आचार्यवर का जब सरकारी मुद्रणालय में पधारना हुआ तो उन्होंने बहुत प्रसन्नता प्रगट की। स्थान सब दृष्टियों से अनुकूल और मनोरम था। यह सब मुख्यमंत्री श्री नाईक की अणुव्रत और आचार्य श्री के प्रति भक्ति भावना का सूचक था। आचार्य श्री एक महीने उस भवन में विराजे। जैन-अजैन हजारों लोग दर्शनार्थ आए पर कहीं से भी सरकारी भवन में प्रवास को लेकर विरोध का स्वर नहीं उभरा। मुंबई का वह प्रवास गुजरात और महाराष्ट्र राज्य में नैतिक व चरित्रक मूल्यों के विकास के लिए ऐतिहासिक रहा।

मुख्यमंत्री बी.पी. नाईक सरकारी मुद्राणालय में कई बार आचार्य श्री के

दर्शनार्थ आए तथा किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो इसकी भी जानकारी लेते रहे। उन्होंने अपने निवास स्थान पर आचार्य श्री के स्वागत का कार्यक्रम भी रखा तथा आचार्य श्री के पधारने से हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव किया। आचार्य श्री को लेने व छोड़ने दूर तक साथ चले। इस मुंबई प्रवास में राष्ट्र के अनेक प्रमुख राजनेता, साहित्कार, पत्रकार, उद्योगपति व समाजसेवी आचार्य प्रवर के संपर्क में आए। इसमें मुद्रणालय का विशाल भवन भी निमित्त बना।

व्यापक प्रभाव

आचार्य श्री तुलसी का व्यक्तित्व बहुत व्यापक था। उनके विचारों और अवदानों से विभिन्न धर्मों और वर्गों के लोग प्रभावित थे। उन्होंने उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक भारत के अधिकतर राज्यों की पदयात्राएं की। उनका जहां भी जाना हुआ वहां उन्होंने जनता से सीधा सम्पर्क साधा। उनके विचार महान क्रांतिकारी थे। उन्होंने जीवन भर जाति, पंथ व मजहब के नाम पर खड़ी की गई नफरत की दीवारों को तोड़ने का काम किया। उनकी पदयात्राओं से राष्ट्रीय एकता का आधार मजबूत बना। मैंने बहुत नजदीक से देश के शीर्षस्थजनों के मन में आचार्य श्री तुलसी का अमिट प्रभाव देखा। अनेक संस्मरण मेरी स्मृति में है। कुछ संस्मरण यहां प्रस्तुत कर रहा हूं।

महाराष्ट्र में 'अन्तरिक्ष जी' जैन समाज का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हैं। उस तीर्थ को लेकर दिगम्बर-श्वेताम्बर समाज में विवाद चल रहा था। वह विवाद न्यायालय में पहुंच गया। फिर भी लम्बे समय तक उसका समाधान नहीं हुआ। एक दो बार कार्यकर्ताओं में मारपीट हो गयी। तब उस विवाद की फाइल गृह मंत्रालय के पास भेज दी गयी। उस समय गृहराज्य मंत्री कल्याणराव पाटिल थे। उन्होंने इस फाइल को पढ़कर पवनार आश्रम में आचार्य विनोबा भावे से उस विवाद के विषय में मार्गदर्शन मांगा। विनोबाजी ने कहा-अभी जैन समाज में आचार्य श्री तुलसी बहुत प्रभावशाली हैं उनसे मार्गदर्शन लो। कल्याण राव पाटिल समय-समय पर बम्बई प्रवास में मुझसे मिलते रहते थे। उन्होंने सारी बात मुझे बताई। मैंने कहा-इस विवाद के साथ आचार्य श्री तुलसी का सम्बन्ध नहीं है। जो आचार्य इस समस्या से सम्बन्धित हैं उनसे ही आप इस विषय में वार्तालाप करें। आचार्य विनोबा भावे के मन में आचार्य श्री तुलसी के प्रति कितना आदर का भाव था हम इससे समझ सकते है।

१९७४ में आचार्य श्री तुलसी का दिल्ली प्रवास था। उस समय भगवान महावीर की पच्चीसौवीं निर्वाण शताब्दी के संदर्भ में अनेक विराट आयोजन हुए। अणुव्रत आंदोलन की भी राजधानी में विशेष अनुगूंज हुई। कार्तिक शुक्ला द्वितीया को आचार्य श्री तुलसी के साठ वर्ष सम्पन्न हो रहे थे। उसके उपलक्ष्य में षष्ठी पूर्ति समारोह का आयोजन करना निश्चित हुआ। उस समय सभी आयोजनों के समायोजन में मेरी विशेष सहभागिता रहती।

एक दिन मैं सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी स्वामी (भाईजी महाराज) के पास बैठा था। वे जानते थे मेरा राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद से निकट सम्पर्क है। उन्होंने कहा—राकेश! यदि षष्ठी पूर्ति समारोह में नव निर्वाचित राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद अणुव्रत भवन में उपस्थित हो तो मुझें विशेष प्रसन्नता होगी। मैंने कहा—मुनिश्री! यह असंभव प्रतीत होता है फिर भी मैं प्रयास करूंगा।

मैंने राष्ट्रपतिजी से इस संदर्भ में वार्ता करते हुए आचार्य श्री तुलसी द्वारा देश भर में किये गए नैतिक व चारित्रिक मूल्यों के उत्थान के बारे में उन्हें जानकारी दी। राष्ट्रपति ने कहा—मेरे मन में आचार्य श्री तुलसी के प्रति आदर व सम्मान का भाव है। यह कहते हुए उन्होंने अणुव्रत भवन में आयोजित षष्ठीपूर्ति समारोह से सम्मिलित होने की स्वीकृति दी।

मैंने देखा, देश के शीर्षस्थ व्यक्तियों के मन में आचार्य श्री तुलसी का कितना प्रभाव था। राष्ट्रपति प्रसन्नता के साथ समारोह में सम्मिलित हुए। सामान्यतः राष्ट्रपति का कार्यक्रम बनाने के लिए अनेक तरह की औपचारिकताएं पूरी करनी होती है, इस आयोजन से भाईजी महाराज को विशेष प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझे इसके लिए साधुवाद दिया।

ईस्वी सन् १९६४ में मेरा मुम्बई महानगर में चातुर्मास था। कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन आचार्य श्री तुलसी के जन्मदिन का कार्यक्रम मैरीन ड्राईव स्थित अणुव्रत सभागार में आयोजित करने का निर्णय हुआ। उस समय मंगलदास पकवासा महाराष्ट्र के राज्यपाल थे।

जब कार्यकर्ताओं का शिष्ट मण्डल आचार्य श्री के जन्म दिवस के कार्यक्रम में उनको आमंत्रित करने गया तब राज्यपाल पकवासा ने

कहा—'आचार्य श्री तुलसी के जन्मदिवस का कार्यक्रम राजभवन में ही रखा जाना चाहिए। मैं भी कार्यक्रम में रहूंगा और अन्य प्रमुख लोगों को भी आमंत्रित करूंगा। मुनिजी को मेरी ओर से निवेदन करें, वे भी यहां पधार जाएं।' कार्यकर्ता यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जब व्याख्यान में राज्यपाल का समाचार सुनाया तब सबको आश्चर्य मिश्रित हर्ष का अनुभव हुआ।

राजभवन के मुख्य सभागार में कार्यक्रम आयोजित हुआ। विधान परिषद् के अध्यक्ष वी.एस. पागे, विधानसभा अध्यक्ष श्री टी.एस.भारदे आदि विशिष्ट व्यक्तियों ने कार्यक्रम में भाग लिया। उपस्थित व्यक्तियों ने राज्यपाल पकवासा को स्टेज पर बैठने के लिए बहुत अनुरोध किया। राज्यपाल ने कहा-त्यागी साधुओं के सामने हमारे जैसे किसी व्यक्ति का ऊपर बैठना मैं उचित नहीं मानता। वे स्टेज पर नहीं बैठे।

राज्यपाल मंगलदासजी पकवासा ने श्रद्धासिक्त शब्दों में कहा-आज राजभवन का वातावरण पवित्र हो गया है मेरे मन पर आचार्य श्री तुलसी के व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव है। मैंने उनके ३-४ बार ही दर्शन किए है पर वे मुझे संत परम्परा के उज्जवल नक्षत्र प्रतीत हुए।

उन्होंने आगे कहा—मैं कृतज्ञ हूं मुनिश्री के प्रति, उन्होंने मेरे निवेदन पर राजभवन में पधार कर मुझे आचार्य श्री तुलसी का जन्मदिवस मनाने का मौका दिया।

महाराष्ट्र सरकार के उपशिक्षा मंत्री डॉ. कैलाश एन. एन. ने समारोह का संयोजन करते हुए मानवता को आचार्य श्री तुलसी के अवदान विषय पर प्रकाश डाला। टी.एस.भारदे, वी.एस.पागे, मुनि हर्षलालजी व मुनि मिश्रीमलजी के आचार्य श्री तुलसी जीवन दर्शन पर सारगर्भित वक्तव्य हुए।

मैंने अपने वक्तव्य में आचार्य श्री तुलसी को क्रांतिकारी धर्माचार्य बताते हुए अणुव्रत दर्शन पर प्रकाश डाला। मैंने आगे कहा—राज्यपाल महोदय की नैतिक मूल्यों में गहरी आस्था है, उन्होंने यह कार्यक्रम राजभवन में आयोजित कर श्रद्धा भक्ति का प्रदाहरण प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय गान के साथ जन्मदिवस का समारोह सम्पन्न हुआ।

अष्टगणी सम्पदा के धनी

स्थानांग सूत्र में आचार्य की आठ संपदाएं बतलाई हैं।

आचार संपदा, श्रुत संपदा, शरीर संपदा, वचन संपदा, वाचना संपदा, मति संपदा, प्रयोग संपदा, संग्रह परिज्ञा। आचार्य के आगमों में जो प्रमुख विशेषण है उनमें एक अष्ट गणी संपदा संपन्नता है। आचार्य श्री तुलसी के जीवन में इस विशेषण का सजीव दर्शन होता था।

आचार संपदा के चार भेद हैं–संयम ध्रुव योग युक्तता, असंप्रग्रह, अनियत वृत्ति, वृद्धशीलता। आचार्य श्री तुलसी संयम साधना में ध्रुव योगी थे। वे अप्रमत साधक थे। दसवेकालिक की चूलिका में कहा है–जिसका मानस संयम में स्थिर होता है उसके लिए साधुत्व स्वर्ग के समान है। जिसका मानस संयम में लीन नहीं होता उसके लिए साधुत्व नर्क से सामन है। आचार्य श्री तुलसी से हर व्यक्ति को संयम की दिव्य प्रेरणा प्राप्त होती थी। असंप्रग्रह का तात्पर्य है–जाति श्रुत आदि आठ प्रकार के अभिमान से मुक्त होना। अहिंसा महाव्रत की साधना के लिए आत्मतुला की चेतना का विकास जरूरी है। आचार्य श्री तुलसी साम्ययोगी थे। उनका जीवन, अहिंसा, समता और गुणग्राहकता की प्रयोगशाला था। वे अप्रतिबद्ध विहारी थे। उनका विश्वास था–'जो वर्तमान में मुक्ति का अनुभव करता है वह स्थायी मुक्ति का दर्शन कर सकता है। जो प्रतिबद्धता का जीवन जीता है वह कभी मुक्त नहीं हो सकता।'

दूसरी श्रुत संपदा के चार भेद है। बहुश्रुतता, परिचितसूत्रता, विचित्रसूत्रता, घोषविशुद्धिकर्ता। आचार्य श्री तुलसी ने आगमोदधि का गहरा आलोडन-विलोडन किया था। उनकी दिनचर्या में प्रतिदिन आगम स्वाध्याय के लिए नियत समय रहता था। छोटे-छोटे गांवों में स्थान की कठिनाई होने पर

भी यह क्रम अनवरत गति से चलता था। उन्हें विभिन्न आगमों के पाठ वृद्धावस्था में भी अस्खलित रूप से कंठस्थ थे। उनके दैनिक प्रवचन आगम आधारित होते थे। उनके वाचनाप्रमुखत्व में आगम साहित्य के संपादन, विवेचन का जो कार्य हुआ वह देश-विदेश के आगम मर्मज्ञों और शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणाप्रद और आश्चर्यजनक है। उनके सान्निध्य और मार्गदर्शन में अनेक बहुश्रुत साधु-साध्वियों का निर्माण हुआ।

विचित्र सूत्रता का अर्थ है–स्वपर सिद्धान्तों का ज्ञान होना। पहले अधिकतर जैन आचार्य जैन आगमों और सिद्धान्तों का ज्ञान करते थे, पर आचार्य श्री तुलसी ने स्व पर सिद्धान्तों का गहरा ज्ञान किया और अपने शिष्य-शिष्याओं में सब धर्मों और दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन का विकास किया। उनके सान्निध्य और मार्गदर्शन में साधु-साध्वियों और मुमुक्षु साधकों के लिए स्वतंत्र पाठयक्रम का निर्माण हुआ, जिसमें भारतीय दर्शनों के साथ पाश्चात्य दर्शनों के अध्ययन का भी समावेश किया गया। आचार्य श्री ने धर्म और विज्ञान के समन्वय का समुचित मार्गदर्शन किया। उन्होंने हजारों व्यक्तियों का उच्चारण शुरू कराया। इस दिशा में उन्होंने साध्वी समाज पर भी बहुत श्रम किया। वे आगम पाठ का अशुद्ध उच्चाण सुनते, तो उनके दिल में तीर जैसा लगता था।

तीसरी शरीर संपदा है। उसके चार भेद हैं। आरोहपरिणाहयुक्तता, अनवत्रपता, परिपूर्णइन्द्रियता, स्थिरसंहनता। आचार्य श्री तुलसी की शरीर संपदा आकर्षक और विलक्षण थी। उनके सुदर्शन व्यक्तित्व से व्यक्ति पहले दर्शन में ही मंत्रमुग्ध हो जाता था। उनकी आंखों और कानों की छटा को देखकर महात्मा बुद्ध का स्मरण हो जाता था। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने गीत में लिखा है–**''कानों की छटा निराली, आंखे इमरत की प्याली, किसने सौंन्दर्य सजाया रे।''** महर्षि रमण के आश्रम में साधना करने वाले निदरलैंड के एक साधक ने आचार्य श्री का चित्र देखकर जो उद्‌गार प्रकट किये उनका सार इस प्रकार है–''आपके विशाल कान दिव्य हैं। ऐसे कान वर्तमान में लाखों व्यक्तियों में नहीं देखें। आपके चक्षु अत्यन्त तेजस्वी और अलौकिक है। इनसे अमृत झरता है, जो एक महान आत्मा के अवतरण का प्रतीक है। हाथ की मुद्रा और रचना आर्शीवाद देने की सूचना देती है। आपका हृदय पवित्र और विशाल

है। आपके द्वारा विश्व का कल्याण होगा।'' शरीर संपदा का चतुर्थ भेद है—स्थिर संहनता। आचार्य श्री का संहनन बहुत स्थिर और सबल था। प्रातः ४ बजे से रात्रि १० बजे तक वे कठोर श्रम करते। वे प्रत्येक क्षण का समुचित उपयोग करते थे। विहारचर्या में भी वे नियमित प्रवचन करते थे। कभी-कभी दिन में ३-४ बार भी प्रवचन करते थे। साधु-साध्वियों को अध्ययन कराना, आगम साहित्य का संपादन करना, प्रवचन करना व जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का समाधान करना उनकी दिनचर्या का नियमित कार्यक्रम था। यह स्थिर संहनता का परिणाम था।

चतुर्थवचन संपदा है—उसके चार भेद हैं। आदेयवचनता, मधुरवचनता, अनिश्रितवचनता, असंदिग्धवचनता। आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों में जैन-जैनेत्तर व आस्तिक-नास्तिक सभी उपस्थिति होते थे। उनकी वचन संपदा के प्रभाव से सभी संतोष और समाधान का अनुभव करते थे। वे गूढ़ से गूढ़ विषय को इतना सुग्राह्य और सुपाच्य बना देते थे जिससे अशिक्षित श्रोता भी आत्मसात कर लेते थे। उन्होंने वर्षो तक ध्वनिवर्धक यंत्र के बिना भी हजारों की उपस्थिति में धारा प्रवाह प्रवचन किये। मार्गवर्ती गावों में भी उनका प्रवचन होता था। उनकी वचन संपदा के परिणामस्वरूप हर राज्य के लोगों ने श्रद्धानत होकर के प्रवचन सुने। आचार्य श्री जब तमिलनाडु व दक्षिण के अन्य राज्यों की यात्रा करने वाले थे तब श्री मोरारजी भाई देशाई जैसे अनेक प्रमुख लोगों ने कहा—अभी दक्षिण में हिन्दी का विरोध बहुत है। आप हिन्दी में प्रवचन करते हैं इससे वहां लाभ के बदले नुकसान हो सकता है। परामर्श देने वालों की भावना शुद्ध थी पर, आचार्य श्री की वचन संपदा का यह चमत्कार था कि तमिलनाडु की यात्रा का अणुव्रत के कार्य की दृष्टि से बहुत सफल रही। अनिश्रित वचन संपदा का अर्थ है—पूर्वाग्रह से मुक्त होकर तत्व का विवेचन करना। बहुत से धर्माचार्य साम्प्रदायिक व्याहमोह से ग्रस्त होते है। उनकी दृष्टि संकुचित होती है। आचार्य श्री तुलसी ने असाम्प्रदायिक धर्म का विवेचन किया। इससे धर्म के कट्टर विरोधी भी उनके समर्थक बन गये। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार कॉमरेड यशपाल आचार्य श्री तुलसी से पहली बार लखनऊ में मिलें। उन्होंने मिलते ही कहा—आचार्य श्री मैं धर्म-कर्म का विरोधी हूँ। मैं साम्यवादी हूं। पर उन्होंने जब आचार्य श्री से धर्म की व्याख्या सुनी तो वे बहुत प्रभावित हुए। यह

अनिश्रित वचन संपदा का परिणाम था। कॉमरेड यशपालजी क्रमशः बहुत अनुकूल और समर्थक हो गये। वे आचार्य श्री के धवल समारोह के प्रथम चरण में बीदासर आए और अपना एक उपन्यास उनके चरणों में उपहृत किया। देश के ऐसे ख्यातनाम पचासों साम्यवादी और नास्तिक व्यक्ति आचार्य श्री तुलसी के विचारों से प्रभावित होकर धर्म के समर्थक बन गये। अन्य जैन संप्रदायों के हजारों व्यक्ति तेरापंथ के सिद्धान्तों से भ्रमित थे। आचार्य श्री की वचन संपदा से धीरे-धीरे उनका भ्रम दूर हो गया। आज एकता और सौहार्द का सुखद वातावरण दृष्टिगोचर हो रहा है।

पांचवी वाचना संपदा हैं, उसके चार भेद हैं। विदित्वोद्देशन, विदित्वा, समुद्देशन, परिनिर्वप्यवाचन, अर्थनिर्यापणा।

आगम की वाचना के लिए आचार्य शिष्यों की योग्यता और पात्रता देखकर उन्हें वाचना देते थे। जैसे पाचन शक्ति के अभाव में गरिष्ठ भोजन अजीर्ण का कारण बन जाता है, नया विकार उत्पन्न करता है। इसी प्रकार पात्रता और ग्रहणशीलता के अभाव में ज्ञान भी आत्मसात नहीं होता, शंका, विचिकित्सा आदि विभिन्न मनोरोग उत्पन्न करता है। आचार्य श्री तुलसी साधु-साध्वियों के अधीत ज्ञान की आकस्मिक प्रश्नों द्वारा परीक्षा भी लेते रहते थे। वे एक बार हम तीन शैक्ष साधुओं से दसवैकालिक सूत्र का पाठ सुन रहे थे, एक साधु को पाठ विस्मृत हो गया, तब उन्होंने सबको पुनरावर्तन की प्रेरणा देने के लिए एक लघु कथा सुनाई। उस समय हम तीनों के लिए यह कथा नई थी। उन्होंने कहा—एक गुरू ने चार प्रश्न पूछे—पान की चोली क्यों सड़ जाती है? घोड़ा क्यों अकड़ जाता है? तवे की रोटी क्यों जल जाती है? विद्या विस्मृत क्यों हो जाती है? इन चारों प्रश्नों का एक उत्तर देने के लिए कहा। तब एक बुद्धिमान विद्यार्थी ने उत्तर दिया—फेरा नहीं। यदि कंठस्थ ज्ञान को फेरेंगे नहीं तो सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। इससे सबको पुनरावर्तन की प्रेरणा मिली। यह घटना विक्रम संवत् २००३ के फाल्गुन मास की है।

आचार्य श्री तुलसी पुनर्रावर्तन के साथ कठिन शब्दों का मर्म भी समझाते थे। णत्थि णय विहूणं, जिण वयणं। आगम पाठों का मर्म समझने के लिए सापेक्ष दृष्टि का विकास जरूरी है। वे आगम वचनों की व्याख्या के साथ नैगम संग्रह आदि नय तथा निश्चय और व्यवहारनय का तात्पर्य भी समझाते थे,

जिससे अर्थ के पौर्वापर्य का बोध हो जाता था।

छठी मति संपदा है। इसके चार भेद हैं। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। मति संपदा बुद्धि कौशल का प्रतीक है। आचार्य श्री तुलसी इस संपदा के निसर्गज धनी थे। उनकी ग्रहण शक्ति अद्‌भुत थी। मति संपदा के चतुर्थ भेद के आधार पर स्मरण शक्ति का विकास होता है। जिसकी स्मृति प्रखर होती है वह आचार्य अपने गण में श्रुत की सुरसरिता प्रवाहित कर सकता है। आचार्य श्री तुलसी ने दीक्षा ली तब धर्मसंघ में शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। उस समय आज की तरह अध्ययन की दिशाएं स्पष्ट नहीं थी, अध्ययन-अध्यापन की सामग्री सुलभ नहीं थी। आचार्य श्री ने अपनी अद्‌भुत मति संपदा से स्वयं के अध्ययन के साथ नवदीक्षितों को अध्यापन कराना भी प्रारंभ कर दिया। धर्मसंघ के अनेक वरिष्ट संतों ने उनकी पाठशाला में अध्ययन किया। जिस प्रकार दीपक से दीपक जलता है, इसी प्रकार शिक्षित साधु-साध्वियों ने अन्य साधु-साध्वियों को अध्ययन कराया।

सातवीं प्रयोग संपदा है। उनके चार भेद हैं। आत्मपरिज्ञान, पुरूषपरिज्ञान, क्षेत्रपरिज्ञान, वस्तुपरिज्ञान। प्राचीन युग में अलग-अलग मतों-संप्रदायों में शास्त्रार्थ होते थे। प्रयोग संपदा में इसकी झलक मिलती है। आचार्य श्री तुलसी के पास हजारों जैन-अजैन, आस्तिक-नास्तिक चर्चा वार्ता करने आए। उनमें बहुत से जिज्ञासु और ग्रहणशील थे, आग्रही और वितण्डावादी भी बहुत थे। वे प्रश्नकर्ता की मनःस्थिति पहले ही समझ लेते थे।

जो जिज्ञासु और ग्रहणशील होते थे उन्हें वे पर्याप्त समय प्रदान करते थे। जो वितण्डावादी होते तथा जय-पराजय की भावना से चर्चा-वार्ता करते, उनसे वार्त्तालाप करना वे समय का दुरूपयोग समझते थे।

वि. सं. २००४ के ग्रीष्म काल में आचार्य श्री तुलसी फतेहपुर विराज रहे थे। उस समय चर्चा-वार्ता होती रहती थी। कुछ वैदिक धर्मावलंबी पंडित शिक्षक बड़ी संख्या में वार्त्तालाप करने आए। उन्होंने कहा-आप जैन लोग नास्तिक है, ईश्वर को नहीं मानते हैं, फिर आप भक्ति किसकी करते है।

आचार्य श्री ने कहा-हम ईश्वर को मानते हैं, पर ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता-धर्ता नहीं मानते हैं।

आचार्य श्री ने नमस्कार महामंत्र का अर्थ बताया।

आंगतुक पंडितों ने कहा—यदि परमात्मा ने सृष्टि को नहीं बनाया तो किसने बनाया?

आचार्य श्री ने कहा-सृष्टि अनादि है। जड़ चेतन द्रव्यों के संयोग-वियोग से इसमें रूपांतरण होता रहता है।

पंडितों ने आवेश में कहा-बिना बनाए कोई वस्तु कैसे बन सकती है।

आचार्य श्री ने कहा-परमात्मा को किसने बनाया?

तब पंडित बोले—वह तो सनातन है।

आचार्य श्री ने कहा—जैसे परमात्मा को आप अनादि और सनातन मानते हैं वैसे सृष्टि को अनादि क्यों नहीं मानते। पंडितों के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

आचार्य श्री ने कहा—यदि परमात्मा बनाते हैं तो किसी को सुखी और किसी को दुःखी क्यों बनाते हैं। उन्होंने कहा—जिसके जैसे कर्म होते हैं, उसके अनुसार सुख-दुख मिलते हैं सबको।

आचार्य श्री ने कहा—हमारे विचार से यह संसार अनादि है। इसमें कर्मो के अनुसार सुख-दुख मिलता है।

पंडितों के साथ दो-चार आधुनिक शिक्षा प्राप्त शिक्षक थे।

उन्होंने कहा-हमारे मन में ईश्वरवाद के संबंध में जैन धर्म के प्रति भ्रांति थी आज वह दूर हो गई।

आठवीं संपदा—संग्रह परिज्ञा है। इसके चार भेद है—बालादि योग्य क्षेत्र, पीठ फलक संप्राप्ति, काल समानयन, गुरू पूजा। इस संपदा का संबंध संघ निपुणता से है। संघ की समुचित व्यवस्था करना आचार्य का एक प्रमुख दायित्व है। संघ में बालक होते हैं, वृद्ध साधु भी होते हैं। क्षेत्र का चुनाव ऐसा हो जिससे सबको चित्त समाधि मिले, सबकी ज्ञान, दर्शन, चरित्र की साधना व्यवस्थित हो। चतुर्मास में जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति हो जाती है, इसलिए पीठ फलक आदि की प्राप्ति पर भी आचार्य को ध्यान देना आवश्यक होता है। आचार्य श्री तुलसी ने विशाल धर्मसंघ का नेतृत्व किया।

ई. सन् १९७४ में भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर आचार्य श्री तुलसी का चतुर्मास दिल्ली था। वहां आचार्य श्री के विराजने का स्थान अनुकूल था पर, प्रारंभ में साध्वियों के लिए स्थान अनुकूल नहीं था। तब आचार्य श्री ने चिन्ता प्रगट करते हुए कहा—हमें तो इतना अनुकूल भवन उपलब्ध हो गया है, पर साध्वियों को बिल्कुल ठीक स्थान नहीं मिला है। जब अनुकूल स्थान की व्यवस्था हुई तब आचार्य श्री निश्चिंत हुए। आचार्य तुलसी सारे धर्मसंघ को अपना शरीर समझते थे, किसी भी साधु-साध्वी की पीड़ा को वे अपनी पीड़ा समझते थे।

इस संपदा का तीसरा भेद काल समानयन है। इसका तात्पर्य है भिक्षा स्वाध्याय आदि की यथासमय व्यवस्था करना। 'काले कालं समायरे' का ध्यान न रहे तो भिक्षा की प्राप्ति कठिन हो जाती है।

चतुर्थ भेद है—गुरू पूजा। धर्मसंघ में विनय की परम्परा व्यवस्थित बढ़ती रहे, इस पर ध्यान देना आचार्य का कर्त्तव्य होता है। आचार्य श्री तुलसी जब आचार्य बनें तब उनसे रत्नाधिक संत बहुत थे। वे सब बड़ें संतों को विधिवत वंदना करते थे। मार्ग में रत्नाधिक साधु मिलते तो वे सिर झुकाकर बद्धांजली होकर वंदना करते। हर शैक्ष साधु को विनय का प्रशिक्षण देते थे तथा अन्य आचार के साथ विनय-अनुशासन के व्यवहार का गहरा सिंचन करते थे।

परम्परा-प्रगति के समन्वय सेतु

आचार्य श्री तुलसी प्रगतिशील चिंतन के धनी थे। उन्होंने धर्मसंघ की गतिविधियों में नाना प्रकार के परिवर्तन किए। उनके व्यक्तित्व की उपरोक्त छवि सर्वविदित है। पर वे जितने परिवर्तन के पक्षधर थे उतने ही प्रवाहपातिता के विरोधी थे। वे अंधे प्रवाह में न कभी स्वयं वहे, और न किसी को बहने दिया। उनका हर परिवर्तन सुविचारित होता था। वे रूढ़िवादी नहीं थे पर, वे हर नए विषय को आगमवाणी और आचार्यों की वाणी की कसौटी पर कसते थे। इसके साथ धर्मसंघ की एकता के लिए बहुश्रुत संतों के साथ नए विषयों पर वर्षों तक विचार विमर्श करते थे। ध्वनिवर्धक यंत्र के प्रयोग पर दसों वर्षों तक संघ में अंतरंग चिंतन-मंथन चला। आचार्य श्री तुलसी दूरदर्शी थे, क्रांतिकारी थे, वे युग की अपेक्षाओं को समझते थे। इसके साथ संघ की एकता व मौलिक परम्परा की सुरक्षा को भी बहुत महत्त्व देते थे। उनके द्वारा रचित गीत की प्रसिद्ध पंक्ति है-

'मौलिकता रहे सुरक्षित, परिवर्तन सदा अपेक्षित'

आचार्य श्री तुलसी जब पट्टासीन हुए तब सामंती परिवेश था। सामाजिक वातावरण में जातिवाद का गहरा प्रभाव था। किसी अस्पृश्य जाति के व्यक्ति का धर्मसभा में सभ्य लोगों के बीच बैठना कठिन था। महिलाओं के लिए घूंघट आवश्यक था। समाज में नारी शिक्षा के द्वार बंद थे। धर्माचार्यों को भी राजाओं और सामंतों के लिए प्रयुक्त खमाघणी, अन्नदाता आदि संबोधनों से संबोधित करते थे। सामाजिक और पारिवारिक रीतिरिवाजों में आडम्बर और प्रदर्शन का साम्राज्य था। महिलाओं में सोने, चांदी के आभूषण पहनने का व्यापक प्रचलन था। बाल विवाह, मृत्यु भोज तथा पति की मृत्यु के बाद वर्षों तक कोने में बैठे रहना आदि नाना प्रकार की अर्थहीन परम्पराएं समाज में

प्रचलित थी। धर्म पर सम्प्रदायवाद का आवरण छाया हुआ था। धर्म के नाम पर आग्रह और विग्रह से भरे वितण्डावाद होते रहते थे। इन सामाजिक और धार्मिक कुरूढ़ियों के विरोध में आचार्य श्री तुलसी ने क्रांति का शंखनाद किया। उन्होंने महिलाओं के सुषुप्त मानस में जागरण की अभिनव ज्योति प्रज्वलित की तथा युग के साथ आगे बढ़ने की ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की। अपने विचारों और कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने युवा साधु-साध्वियों की सेना तैयार की। साधु-संस्था को पहले प्रशिक्षित किया। शास्त्रीय और पारम्परिक ज्ञान के साथ युग के नव चिंतन का सम्यक बोध भी करने का अवसर दिया। इसी तरह पुराने संस्कारों से रंगे हुए साधुओं को धीरे-धीरे युगधारा के साथ मोड़ा। एक बार नए परिवर्तनों को लेकर कतिपय वरिष्ठ संत धर्मसंघ से अलग हो गए। वह समय आचार्य श्री के लिए कठिन परीक्षा का था। समाज में भयानक ऊहापोह का वातावरण था। आचार्य श्री धर्मसंघ की एकता और मौलिक परम्परा की सुरक्षा भी चाहते थे, साथ ही अर्थहीन परम्पराओं में बदलाव भी चाहते थे। इस स्थिति में आचार्यश्री ने एकता के लिए अपने एक बड़े निर्णय का परिवर्तन किया। जो संत अलग हुए थे उन्होंने भी विनय और समर्पण का अद्‌भुत परिचय दिया।

इस घटना के लगभग तीन वर्ष बाद आचार्यप्रवर बंगाल की ओर पधारते हुए आगरा पधारे। स्थानकवासी समाज के प्रमुख संत उपाध्याय श्री अमर मुनिजी उस समय वहां विराजमान थे। उनके अनुरोध पर आचार्य श्री तुलसी स्थानक में पधारे। आचार्य श्री ने उनके विचारों का आदर कर वहां गोचरी की, आहार किया। उसके बाद अमर मुनिजी से मधुर परिचर्चा हुई। उन्होंने कहा—आचार्यजी कुछ वर्ष पूर्व आपके धर्मसंघ के कई विशिष्ठ साधु संघ से अलग हो गए थे, बाद में क्या हुआ? आचार्य श्री ने कहा—वे वापिस संघ में सम्मिलित हो गए। अमर मुनिजी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—''आचार्यजी! आप बहुत भाग्यशाली है। पुराने संस्कारों वाले व्यक्यिों को नया चिंतन समझाना बड़ा कठिन है। हमारे समाज में मुझे चाणक्य कहते हैं पर, मैं नए-पुराने विचारों के मतभेद दूर नहीं कर सका। हमारे यहां कुछ साधु-साध्वी ध्वनिवर्धक यंत्र का उपयोग करते हैं, कुछ नहीं करते हैं। इसी तरह हमारे यहां अनेक प्रकार की भिन्नताएं चल रही है। आपने प्रगति की दिशा में कदम

आगे बढ़ाकर भी धर्मसंघ की एकता को एकता को सुरक्षित रखा है, यह आश्चर्य का विषय है।'

आचार्य श्री तुलसी के आचार्य काल में पचासों बातों का परिवर्तन हुआ पर, जो भी परिवर्तन किया उसमें संघ की सहमति का ध्यान रखा। कई विषयों का सामंजस्य होने में अनेक वर्ष लग गए। किन्तु, आचार्य श्री ने धैर्य रखा और धीरे-धीरे सबकी सहमति बनी। कई बातों को लेकर आचार्य श्री को घोर विरोधों का सामना करना पड़ा। परन्तु संघ से परामर्श किए बिना परिर्वतन नहीं किए।

वि.सं. २०१६ में आचार्यवर का चतुर्मास कलकत्ता में था। वहां कुछ विरोधी लोगों ने मल-मूत्र प्रकरण के नाम से विरोध किया। उनका लक्ष्य था-साधु संत बाथरूम का उपयोग करें। इस विषय में तब तक संघ की सहमति नहीं थी इसलिए घोर विरोध सहन कर लिया। लेकिन बाथरूम का उपयोग नहीं किया। यह विरोध ईर्ष्या और द्वेष की भावना से था।

एक बार आचार्य श्री डाबड़ी गाँव पधारे। वहां किसान सम्मलेन का आयोजन था। लगभग ५-६ हजार किसान उपस्थित थे। उस समय तक ध्वनिवर्धक यंत्र (माईक) का उपयोग नहीं होता था। इस कार्यक्रम में लोकनायक जयप्रकाश बाबू भी उपस्थित थे, उन्होंने आचार्य श्री के समक्ष माइक रख लिया। आचार्य श्री ने समझाया जयप्रकाश बाबू! मैं धर्मसंघ के अनुशासन से बंधा हुआ हूँ। धीरे-धीरे माइक के सम्बन्ध में सहमति बनाने का प्रयास हो रहा है। संघ में मान्य होने के बाद ही मेरा माइक पर बोलना उचित रहेगा। जय प्रकाश बाबू आचार्य श्री की कठिनाई को समझ गए। उन्होंने उसी समय माइक वहां से उठा लिया। परिवर्तन के साथ धर्मसंघ की एकता और अनुशासन के प्रति वे कितने जागरूक थे। इसका यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

वि.सं. २००५ तक तेरापंथ धर्मसंघ में फोटो लेने की विशेष परम्परा नहीं थी। सं. २००६ में आचार्य श्री का जयपुर चतुर्मास हुआ। वहां फोटो की परम्परा का थोड़ा प्रारंभ हुआ। नए चिंतन वाले लोग इसे इतिहास की सुरक्षा मानते थे। पुराने चिंतन वाले इसे उचित नहीं मानते थे। प्रारंभ में कोई फोटो लेता तो आचार्य श्री मुंह पर कपड़ा कर लेते थे। कई वर्षो तक यह क्रम चलता

रहा। वि.सं. २०११ में आचार्य प्रवर का चतुर्मास बंबई हुआ। उस समय श्री मोरारजी देसाई बंबई के मुख्यमंत्री थे। वे अणुव्रत के एक कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। जब फोटोग्राफर ने फोटो ली तब आचार्यश्री ने अपने मुख के आगे कपड़ा कर लिया। यह मुख्यमंत्रीजी को अच्छा नहीं लगा। कार्यक्रम पूरा होने पर उस समय तो वे वहां से चले गए। कुछ दिनों के बाद श्री सुगनचन्दजी आंचलिया मुख्यमंत्री से मिले तब मोरारजी भाई के कहा-आचार्य श्री तुलसी बहुत अभिमानी है। अपना फोटो भी नहीं लेने देते। सुगनचन्दजी ने उन्हें समझाया। आचार्यवर के पास आकर सुगनचन्दजी ने मोरारजी भाई की बात निवेदन की। आचार्य श्री ने कहा—नए व्यक्ति के कितनी गलत फहमी हो गई। एक दो दिन के बाद एक दो श्रावकों के साथ मुझे मोरारजी भाई के पास भेजा। मैंने इस भ्रांति का स्पष्टीकरण किया। उसके बाद आचार्य प्रवर के सान्निध्य में वे अणुव्रत अधिवेशन में आए और क्रमशः संपर्क बढ़ता ही गया।

पहले धर्मसंघ के साधु-साध्वियों के नए दांत नहीं बनते थे। पुराने संत रोटियां चूर-चूर कर खाते थे। चश्में भी नहीं बनाए जाते थे। ऑपरेशन के रूप में डॉक्टरों की सेवा नहीं ली जाती थी। इन छोटी-छोटी बातों के परिवर्तन के लिए आचार्य श्री को भयानक आलोचनाए सहन करनी पड़ी। धर्मसंघ के सुखद भविष्य के लिए उन्होंने शंकर बनकर विषपान किया और समाज को अमृत पिलाया।

मनुज दुग्ध से दनुज रूधिर से, देव सुधा से जीते है,
किन्तु हलाहल भवसागर का शिवशंकर ही पीते है।

आचार्य श्री तुलसी ने जो भी परिवर्तन किया उसमें अपने एकाधिकार का उपयोग नहीं किया। धर्मसंघ में धीरे-धीरे वातावरण का निर्माण किया, व्यापक सहमति बनाई, उसके बाद परिवर्तन किए। आचार्य तुलसी तेरापंथ के एकछत्र अनुशासक होते हुए भी उनके हृदय में प्रजातांत्रिक मनोवृत्ति का निवास था। आज तेरापंथ धर्मसंघ के नंदनवन में जो भी तरूणिमा और हरितिमा दृष्टिगत हो रही है, उसका प्रमुख श्रेय आचार्य श्री तुलसी को है।

शतशः नमन है उस परम्परा और प्रगति के समन्वय सेतु महापुरूष को!

निष्प्रकम्प व्यक्तित्व

आचार्य श्री तुलसी के व्यक्तित्व के ऐसे अनेक पहलू थे जिनसे मेरा मानस सहजतया प्रभावित रहा है किन्तु हर स्थिति में सन्तुलन बनाए रखना उनकी विरल विशेषता थी। उसकी मेरे मन पर बहुत गहरी छाप है।

मैंने उनके जीवन में बहुत परिवर्तन देखे हैं। वे इतने उतार-चढ़ावों से गुजरे जिनमें साधारण व्यक्ति उलझ जाता है। उसके लिए उन कठिन परिस्थितियों में अपना अस्तित्व बनाए रखना भी कठिन हो जाता है। लेकिन उन बदलती हुई परिस्थितियों में भी मैंने आचार्य श्री की मनःस्थिति को बदलते नहीं देखा। उनके जीवन में ऐसे प्रसंग भी कम नहीं आए जो मन को अत्यन्त आह्लादित करने वाले थे और ऐसे विकट क्षण भी बहुत आए जो व्यक्ति को किंकर्तव्यविमूढ़ बनाने वाले होते हैं, लेकिन वे परिस्थितियां उनके मन को तो क्या दैनिक चर्या को भी कभी प्रभावित नहीं कर सकी। उनके जीवन में चाहे जैसे क्षण आए हों उनकी चर्या में वे किसी प्रकार की प्रतिक्रिया छोड़कर नहीं जाते। उनकी यह समरसता मुझे क्या, न जाने कितनों को प्रभावित किए हुए है। मेरी दृष्टि में उनके सौ-सौ धाराओं में प्रवहमान कर्तव्य को संचालित करने वाली महान ऊर्जा भी यही रही है। बदलते परिवेशों में उनका निष्प्रकम्प व्यक्तित्व वस्तुत ही विस्मयोत्पादक था।

हमारे संघ में आम जनता के लिए आचार्यो तक पहुंचने की मुक्तता बहुत कम थी। आचार्यश्री ने अपने द्वार सबसे लिए खोल दिए और उन्होंने अपने धर्म-संघ को अधिक समता और समानता की भूमिका पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

धर्म जो केवल पारमार्थिक उपलब्धियों का निमित माना जाता था और केवल उपासना ही उसकी सीमा थी, उसको वर्तमान जीवन से सम्पृक्त करने

का मार्गदर्शन आचार्य श्री ने दिया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में स्वतंत्र चिंतन, बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टियों पर बराबर बल दिया। फलतः समाज को उसके बारे में सोचने के लिए नई दिशाएं प्राप्त हुई और हमारा संघ वर्तमान समस्याओं के समाधान-हेतु विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहा है। धर्म को अनुभूतिगम्य बनाने के लिए अध्यात्म के क्षेत्र में ध्यान और योग की मूल्यवत्ता स्थापित कर आचार्यश्री ने अपने धर्मसंघ को अध्यात्म की प्रयोगशाला बना दिया। यह युगीन अपेक्षा भी थी।

यह निश्चित है कि जिस व्यक्ति का मानस हर क्षण विकास और प्रगति की दिशा में सन्नद्ध रहता है, वह वर्तमान से कभी संतृप्त नहीं होता। आचार्य श्री के चिन्तन और कर्तृत्व में मुझे असीम सम्भावनाएं प्रतीत होती थी। जीवन के अन्तिम दशक में भी तरूण जैसा कल्पनाशील और भावुक हृदय आचार्य श्री में था, कभी-कभी अतिकल्पनावादी भी लगने लग जाते, जबकि वे एक कार्य की सम्पन्नता के पहले ही दूसरी परिकल्पनाएं प्रस्तुत कर देते, किन्तु दूसरे ही क्षण स्वयं का अनुभव यह मानने को विवश कर देता है कि जिन महान् पुरूषों ने धरती पर विशिष्ट कार्य किए हैं वे कभी तालाब की तरह रूढ़ और स्थिर नहीं रहे अपितु सरिता की धारा के समान सतत प्रवहमान या गतिशील रहे है।

आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व के सम्बन्ध में जहां तक सामर्थ्य का प्रश्न है, मैं उससे बहुत प्रभावित रहा हूं और संतुष्ट भी। नेतृत्व के क्षेत्र में वे कुछ ओर भी नये प्रयोग करना चाहते थे। हमारे संघ में साध्वी-समाज एक बहुत बड़ी शक्ति है, पर उसकी प्रतिभा को जो सिंचन मिलना चाहिए था, वह लम्बे समय तक नहीं मिला। इस कमी की पूर्ति आचार्य श्री तुलसी ने बहुत तत्परता से की। साध्वियों के विकास की नींव को उन्होंने अपने खून और पसीने से सींचा। फलतः उन्होंने थोडे ही समय में आशातीत प्रगति की है। आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें साध्वियां साधुओं के समान ही कार्य न करती हों। आज हमारा साध्वी-संघ अन्यान्य सम्प्रदायों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यदि आचार्य श्री की विशेष करूणा उसे प्राप्त नहीं होती तो उसका वर्तमान इतना उजला कभी नहीं हो सकता था।

मैंने आचार्य श्री को एक साथ अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करते देखा

उनमें अनुशासक की भूमिका सर्वोपरि रही है, क्योंकि संघीय जीवन में एक अनुशासक का होना अनिवार्य भी होता है। लेकिन इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि एक अनुशासक की दृष्टि अधिकतर व्यक्ति के विकास पर केन्द्रित न रहकर अपनी व्यवस्था और दायित्व को निभाने के लिए केन्द्रित रहती है। इस दृष्टि से आचार्य श्री अपनी संयोजन-कुशलता से व्यक्तियों का उपयोग सही ढंग से करते। उनके प्रति मेरे मानस में सहज समर्पण के भाव रहते थे। उनके इंगित को समझने और आराधने की मनोवृत्ति रहती, अतः उनके हर निर्देश की क्रियान्विति के लिए उत्साह बना रहना स्वाभाविक ही था।

संघर्ष से उत्कर्ष

संस्कृत साहित्य के एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा है—हवा का झोंका दीपक को बुझा देता है, पर प्रचण्ड तूफान भी दावाग्नि को बुझाता नहीं और अधिक प्रज्वलित करता है। इसका भावार्थ है, जिसका उपादान बलवान है, जो शक्ति संपन्न है, समस्याओं और कठिनाईयों के तूफान उसके लिए अवरोधक नहीं, सहयोगी होते हैं।

आचार्य श्री तुलसी असीम शक्ति संपन्न थे। वे अतुल मनोबल के धनी थे, उनके जीवन के पृष्ठ विरोधों और संघर्षो की कहानियों से भरे हुए है। पर, मैं मानता हूँ वे संघर्ष उनके उत्कर्ष के निमित्त बने। उनका आधार सही और सबल था। इसलिए कठिनाइयाँ पैरों को बांधने वाली बेड़ियां नहीं बनी, अपितु ऊँचाई पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी।

आचार्य श्री तुलसी के जीवन में जो संघर्ष आए उन्हें हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। जैन समाज द्वारा उत्पन्न संघर्ष, अजैन समाज द्वारा उत्पन्न संघर्ष तथा धर्म संघ की अंतरंग स्थितियों से उत्पन्न संघर्ष।

जैन समाज द्वारा जो संघर्ष उत्पन्न हुए उनका बीजारोपण तेरापंथ के जन्म के साथ ही हो गया था। आचार्य श्री भिक्षु ने दया-दान व सामाजिक कर्त्तव्यों के संबंध में जो विचार प्रतिपादित किए, ईर्ष्यालु और विद्वेषी लोगों ने उन्हें तोड़ मरोड़ कर चारों ओर फैलाया। इससे लोगों में यह धारणा बन गई तेरापंथी लोग जीवदया और समाज सेवा में विश्वास नहीं करते वे इन बातों का निषेध करते हैं। हिटलर ने कहा है-

'सौ बार बोलने से असत्य भी सत्य प्रतीत होने लगता है' ईर्ष्यालु लोगों के इस दुष्प्रचार से तेरापंथ के प्रति भ्रांत भावना का गरल उत्पन्न हो गया। आचार्य भिक्षु के सभी उत्तरवर्ती आचार्यो ने ईर्ष्यालु लोगों द्वारा फैलाई गई

भ्रांतियों के कारण स्थान-स्थान पर विरोधों और संघर्षो का मुकाबला करना पड़ा।

आचार्य श्री तुलसी प्रारंभ से ही प्रभावशाली और तेजस्वी आचार्य थे। आचार्य बनते ही उनकी यशोगाथा मुख-मुख पर प्रतिध्वनित होने लगी। इससे ईर्ष्या और विद्वेष की ज्वाला ओर अधिक प्रज्वलित हो गई। आचार्य बनने के बाद पहला बड़ा कार्यक्रम मर्यादा महोत्सव का ब्यावर में हुआ। वहां के जैन समाज ने उस कार्यक्रम में सहयोग नहीं करने का प्रस्ताव पारित कर दिया। किसी भी दर्शनार्थी तेरापंथी आगन्तुक को ठहरने के लिए कोई स्थान देगा तो उसे समाज की ओर से दण्डित किया जाएगा। आचार्य तुलसी की तेजस्विता का ही मैं प्रभाव मानता हूँ कि अजैन समाज द्वारा जो सहयोग मिला उसकी बदोलत हजारों दर्शनार्थियों के आने पर भी सारा कार्यक्रम सानन्द संपन्न हुआ। वि. सं. २००६ में आचार्य श्री का चतुर्मास जयपुर हुआ। वहां दया-दान के साथ बाल दीक्षा का विषय ओर जुड़ गया। विरोधी लोगों ने जयपुर की मुख्य सड़कों पर सारे शहर में विरोधी पोस्टर चिपका दिए। आचार्य श्री ने पोस्टरों पर चलते हुए कहा-नंगे पांव चलने से हमारे पांव काले हो जाते है, विरोधी लोगों ने पोस्टर चिपकाकर हमारे पांव काले होने से बचा दिए। आचार्य श्री ने राजस्थानी भाषा में एक पद्य में लिखा—

घर का कागज, घर का पैसा, घर की वक्त बितावे।
तेरापंथ प्रख्याति करे, उपकारी क्यों न कहावे।।

विरोधी लोग अपनी शक्ति लगाकर विरोध के नाम पर तेरापंथ की प्रसिद्धि करते हैं, उन्हें हमारा उपकारी समझना चाहिए।

आचार्य श्री तुलसी ने तेरापंथ के सिद्धांतों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा-जिस कार्य में साध्य और साधन दोनों शुद्ध है, वह मोक्ष धर्म है। साधु मोक्ष मार्ग का साधक है। गृहस्थ के लिए समाज धर्म और राष्ट्र धर्म का पालन भी जरूरी है। इसमें हिंसा और परिग्रह का उपयोग भी होता है तो भी उसे सामाजिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी का निर्वाह करना आवश्यक है। जो लोग कहते हैं तेरापंथी जीव दया या समाज सेवा का निषेध करते हैं यह मिथ्या प्रचार है। आज लाखों तेरापंथी श्रावक समाज सेवा के क्षेत्र में जागरूक है। भ. महावीर के समय जैन राजा हुए उन्होंने देश की रक्षा के लिए जो संग्राम किए

उन्हें मोक्ष धर्म नहीं, राष्ट्र धर्म माना।

आचार्य श्री तुलसी के विवेचन से तटस्थ और जिज्ञासु लोगों की भ्रांतियों का निराकरण हो गया। जयपुर के बाद आचार्य श्री आगरा, दिल्ली, जोधपुर व बम्बई आदि पचासों नगरों-महानगरों में पधारे वहां जैन समाज की ओर से पोस्टरबाजी हुई, नाना प्रकार से विरोध हुए। आचार्य श्री ने उन विरोधों को समभाव से झेला।

आचार्य श्री तुलसी बम्बई दो बार पधारे। पहली बार पधारे तब जैन समाज की ओर से तीव्र विरोध हुआ। वहां का जैन समाज तेरापंथ को जैन मानने को तैयार नहीं था। उस समय लगभग आठ महीनें बम्बई में प्रवास किया। अनेक उपनगरों में विहरण किया, हर स्थान पर विरोध का सामना करना पड़ता। पर, दूसरी बार लगभग १५ वर्ष बाद पधारे तब सारा वातावरण बदला हुआ था। जैन समाज ने स्वागत में पलक पांवड़े बिछा दिए। विरोध की आग के स्थान पर स्वागत के फूलों की वर्षा हो रही थी। लोगों का ज्यों-ज्यों सम्पर्क बढ़ा तेरापंथ के प्रति भ्रांतियों दूर हो गई। प्रबुद्ध लोगों ने आचार्य श्री तुलसी और मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) का साहित्य पढ़ा इससे वे सत्य तत्व को समझने में सफल हो गए। उस समय हजारों जैन लोगों ने श्रद्धा भावना से प्रवचनों का लाभ लिया। जो घोर विरोधी थे, वे श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। तेरापंथ के उग्र आलोचक चिमनभाई चकुभाई शाह व परमानन्द भाई कापड़ियां जैसे अनेकों प्रबुद्ध और चिन्तशील लोगों ने तेरापंथ के सिद्धांतों के संबंध में कई दिनों तक विचार-विमर्श किया। इससे वे संतुष्ट और प्रभावित हुए। उन्होंने कहा –'तेरापंथ के सिद्धांत वीतराग वाणी के सिद्धांत हैं।' उन्होंने आचार्य श्री के स्वागत में निबंध भी लिखे।

अजैन लोगों की ओर से जो विरोध और संघर्ष उपस्थित हुए उसमें पहला प्रसंग हरियाणा के भिवानी नगर का है। वहां पहली बार जब आचार्य श्री तुलसी पधारे तो कतिपय आर्य समाजी पंडित मिलकर आचार्य श्री के पास आए। उन्होंने कहा–आपने हमारे द्वारा छपाए हुए पेम्लेट क्या नहीं देखे हैं? आचार्य श्री ने कहा–देखे हैं। पंडितों ने कहा-फिर उत्तर क्यों नहीं दिया। आचार्य श्री ने कहा-ऐसे पेम्फलेट का हम महत्व नहीं समझते। पंडितों ने कहा–हम आपसे बाजार में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। आचार्य श्री ने कहा-

शास्त्रार्थ करना हैं तो यहां करिये, मैं तैयार हूँ। बाजार में जाने की क्या आवश्यकता है। पंडितों ने कहा–वहां हजारों लोगों की भीड़ में आपको पराजित करेंगे। आचार्य श्री ने हंसते हुए कहा-शास्त्रार्थ ज्ञानचर्चा के लिए होता है, जय-पराजय की भावना से नहीं यदि आपको विजय का सेहरा बांधना है तो आप ऐसे ही बांध लीजिए। आप भिवानी के बाजार में घोषणा कर सकते हैं कि हमने आचार्य तुलसी को हरा दिया। यह सुनते ही पंडित पानी-पानी हो गए। आचार्य श्री के नम्रतापूर्ण विचार सुनकर वे वहां से विदा हो गए। आचार्य श्री ने जाते-जाते उन पंडितों को नानक देव जी का एक दोहा सुनाया.....

नानक हारया ही भला, जीतण दे संसार।
हारै सो हर स्यूँ मिलै, जीत्या जम कै द्वार।।

जब दूसरी बार आचार्य श्री तुलसी भिवानी पधारे तो कुछ पंडित स्वागत में तैयार खड़े थे। उन्होंने कहा–आचार्य जी हमको आपने पहचाना या नहीं। हम वे ही हैं जो आप से पिछली बार शास्त्रार्थ करने आए थे। पर, आपके व्यवहार से हमारा, हृदय परिवर्तित हो गया और आज हम आपके स्वागत में खड़े हैं।

अजैन लोगों द्वारा अग्नि परीक्षा पुस्तक के नाम पर छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में उग्र विरोध हुआ। वहां प्रत्येक रविवार को अग्नि परीक्षा पुस्तक के आधार पर व्याख्यान होता था। अग्नि परीक्षा पुस्तक में महासती सीता के चरित्र को उजागर किया गया है। सीताजी के उज्जवल चरित्र के प्रभाव से अग्नि भी पानी हो गई। यह काव्य जैन रामायण के आधार पर लिखा गया है। हजारों लोग लाभान्वित हो रहे थे। कुछ क्षुद्र वृत्ति के लोगों ने सोचा-यदि इतने अजैन लोग आचार्य श्री तुलसी के सत्संग में जायेंगे तो वे जैन बन जायेंगे। उन्हें रोकने के लिए उन्होंने पुस्तक में लिखित धोबी-धोबिन के संवाद के जो पद्य हैं, उन्हें बिना किसी संदर्भ के छपाकर रायपुर नगर के घर-घर में बांट दिए। इसके साथ यह भी प्रचारित कर दिया कि आचार्य श्री तुलसी ने महासती सीता को गालियां दी हैं।

जहां ईर्ष्या की अग्नि जलती हैं वहां विरोध की चिन्गारी भी दावाग्नि का रूप ग्रहण कर लेती है। रायपुर में यह प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। कुछ लोगों की ईर्ष्या ने सारे शहर में हिंसा का नग्न नृत्य उत्पन्न कर दिया। तेरापंथी लोगों के

मकान तोड़े, दुकानें जलाई, साध्वियों के स्थान पर पथराव किया, प्रवचन पंडाल जला दिया। किस लिए? हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर। राज्य सरकार ने नगर में शांति स्थापित करने हेतु पुस्तक जब्त की। फिर भी शांति नहीं हुई। हिंसात्मक स्थिति को देखते हुए आचार्य श्री ने चतुर्मास में विहार किया। जैन इतिहास में ऐसी घटनाएं आपवादिक स्थिति में हुई है।

इसके बाद एक चतुर्मास के अन्तराल के बाद आचार्य श्री तुलसी का चतुर्मास चुरू में हुआ। वहां अग्नि परीक्षा के नाम पर फिर अशांति हुई। पुस्तक जबलपुर न्यायालय से मुक्त हो गई। फिर भी आचार्य श्री ने लोकनायक जयप्रकाश नारायण से विचार-विमर्श कर पुस्तक को वापस ले लिया। देश के कई प्रमुख और प्रबुद्ध साहित्यकारों ने आचार्य श्री से निवेदन किया—अग्नि परीक्षा उच्च कोटि का काव्य ग्रंथ है। इसमें महासती सीता के उज्जवल चरित्र की महिमा गाई गई है। ईर्ष्यालु लोगों के दुर्व्यवहार से भयभीत होकर आपने इस पुस्तक को वापिस लेकर साहित्य जगत के साथ न्याय नहीं किया है। आचार्य श्री तुलसी ने कहा—''मैं संत पहले हूँ, साहित्यकार बाद में हूँ। यदि मेरी पुस्तक के कारण हिंसा होती है तो मैं उचित नहीं मानता। भ. राम और महासती सीता मेरे आराध्य है, वन्दनीय हैं। यदि अग्नि परीक्षा कोई पढ़े, तो वह वस्तु स्थिति समझ सकता है। फिर भी जिन लोगों ने इस पुस्तक के नाम पर मेरे साथ अभद्र व्यवहार किया, अशांति फैलाई मैं उनके प्रति क्षमा और मैत्री का भाव प्रगट करता हूँ।''

श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा—'आचार्य श्री तुलसी ने यह निर्दोष पुस्तक वापस लेकर सच्चे अहिंसक का परिचय दिया है, सच्चे संत का परिचय दिया है।' आचार्य श्री तुलसी और जयप्रकाश बाबू के वक्तव्य सुनकर कई विरोधी लोगों की भी आंखें पश्चाताप से गीली हो गई। मैं रायपुर और चुरू दोनों का प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ। दोनों ही स्थानों की अत्यंत विषम स्थिति में मैंने आचार्य श्री तुलसी का समभाव और सद्भाव देखा, हिमालय सा अप्रकम्प व्यक्तित्व देखा, उसका शब्दों से वर्णन नहीं कर सकता। अग्नि परीक्षा प्रकरण के बाद आचार्य श्री तुलसी का व्यक्तित्व सकल विश्व के प्रबुद्ध लोगों में ओर अधिक सम्मान्य हो गया।

आचार्य श्री तुलसी के जीवन में आन्तरिक संघर्ष भी कम नहीं आए।

जब-जब मैं उन संघर्षो को याद करता हूँ तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते है। आचार्य श्री का दिल बज्र सा कठोर था, नहीं तो सामान्य व्यक्ति तो इतने विरोधों के आगे अपने घुटने टेक दें। पर वे तो आचार्य श्री तुलसी थे जिन्होंने संघर्षो में भी हार नहीं मानी। उन्होंने आचार्य श्री भिक्षु की स्मृति में सुन्दर लिखा है—

बलिदानों की अमर कहानी, पौरूष की जीवंत निशानी।
संघर्षों में हार न मानी।।
आर्य भिक्षु का त्याग तपोबल, 'तुलसी' अनुसंधान।।

गीत की ये पंक्तियां आचार्य श्री तुलसी के स्वयं के जीवन में शत् प्रतिशत घटित होती है। उन्होंने संघर्षो में हार नहीं मानी।

आन्तरिक संघर्ष के मुख्य विषय थे—पारमार्थिक शिक्षक संस्था, अणुव्रत, धारणा प्रणाली, ध्वनिवर्धक यंत्र, प्रकाशन आदि। आचार्य श्री तुलसी ने समय-समय पर हर नई प्रवृत्ति का शास्त्रीय और संघीय आधार पर स्पष्टीकरण किया, पर कुछ व्यक्तियों का दृष्टिकोण विकृत हो गया था। वे संघ में रहते हुए श्रावकों में अश्रद्धा उत्पन्न करने लगे। आचार्य श्री ने इस व्याधि का निराकरण जरूरी समझा। वि. सं. २०१२ के उज्जैन चतुर्मास के बाद वे गंगापुर पधारे। वहां सैंकड़ों साधु-साध्वियों की उपस्थिति थी। आचार्य श्री ने माघ कृष्णा चतुर्थी को एक मर्यादा पत्र लिखा। दोपहर में सभी साधु-साध्वियों के मध्य वाचन किया और कहा—दो दिनों में सब इस पर हस्ताक्षर कर दें। ८ साधुओं ने हस्ताक्षर नहीं किए। आचार्य श्री के समझाने पर भी वे संघ से अलग हो गए। इस तरह कई महीनों तक वे संत संघ से अलग रहे। समाज में नए पुरानें विचारों को लेकर बड़ी हलचल सी रही। ज्येष्ठ-आसाढ़ मास में आचार्य श्री सरदारशहर पधारे। थोड़े दिनों बाद वे संत भी आ गए। मंत्री मुनिश्री मगनलाल जी स्वामी वहां विराजमान थे। उनके प्रयास से समस्या का समाधान हो गया। कई वर्षो से संघ में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था, उसका समाधान हो गया। उसके बाद भी ''समण दीक्षा'' जैसी कई नई प्रवृत्तियां शुरू हुई पर सरदारशहर में समाधान होने के बाद आचार्य श्री के समक्ष नए-पुराने विषयों के नाम पर संघर्ष होने शांत से हो गए।

आचार्य श्री तुलसी की कुण्डली में संघर्ष का योग था। एक संघर्ष शांत

होता, दूसरा प्रस्तुत हो जाता। जैन समाज द्वारा, जैनेत्तर समाज द्वारा, नए-पुराने विचारों के द्वारा होने वाले संघर्ष जब शांत से हो गए, तब कुछ साधुओं की पदलिप्सा के कारण संघर्ष झेलने पड़े। सभी संघर्ष उत्कर्ष और विकास के हेतु बने।

आचार्य श्री तुलसी की आत्मकथा के पांच खण्ड पढ़ने के बाद लगभग ५५ वर्षों से पत्रकारिता की जिम्मेवारी वहन कर चुके प्रसिद्ध लेखक, संपादन कला विशारद रत्नेश कुसुमाकर ने ''एक ज्योतिर्मय महामानव की जय यात्रा'' शीर्षक से एक समीक्षा लिखी। प्रत्येक खंड की अलग-अलग विस्तृत समीक्षा लिखी। उसमें द्वितीय खंड की समीक्षा करते हुए लिखा–''आचार्य श्री तुलसी को पग-पग पर विरोधियों के कुप्रचार की आंधियों का सामना करना पड़ा है। लेकिन उन्होंने जिस धैर्य, शालीनता, सुजनता और संतत्व से इन सब वितण्डावादों का सामना किया, उससे उनका आध्यात्मिक कद आकाश की ऊँचाई छूने लगा। साथ ही उसमें समुद्र की गहराई के भी दर्शन होने लगे। सुकरात और प्रभु ईसा का प्रभामंडल आचार्य श्री तुलसी में शनैः-शनैः विवर्धित होने लगा।''

आचार्य तुलसी की कहानी का एक अध्याय संघर्षों की स्याही से लिखा हुआ है उसे पढ़ते और लिखते–समय अनुभुति होती है कि आचार्य श्री तुलसी ने अनगिनत संघर्षो को झेला और उन पर विजय प्राप्त की। आचार्य श्री तुलसी के जीवन में जो संघर्ष आए वे एक बड़े ग्रन्थ का विषय है उसे लघु निबंध में समेट पाना कठिन प्रतीत हो रहा हैं।

चक्खूदयाणं के मूर्त्तरूप

आगमों में आचार्य के लिए जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं उनमें 'चक्खूदयाणं' प्रमुख है। चक्खूदयाणं का तात्पर्य है ज्ञान के चक्षु प्रदान करने वाला। आचार्य श्री तुलसी ने ज्ञान और साधना के नए-नए आयामों का उद्घाटन कर इस विशेषण को चरितार्थ किया। वे जब आचार्य बने तब शिक्षा का व्यवस्थित रूप नहीं था, साहित्य का अभाव सा था। पर, आज तेरापंथ धर्मसंघ में शिक्षा और साहित्य की जो सुरसरिता प्रवाहित हुई है, वह दूसरे धर्मसंघों के लिए अनुकरणीय है। जब मैंने दीक्षा ली तब यह सुना जाता था, क्या पढ़ें, हमारा कोई साहित्य है ही नहीं। आज यह कहा जा रहा है, साहित्य इतना हो गया है, क्या-क्या पढ़ें?

यह आचार्य श्री तुलसी की महान तपस्या और दूरदर्शिता का परिणाम है। मेरे जीवन में भी गुरूदेव की प्रेरणा और प्रोत्साहन के अनगिनत प्रंसग बिखरे पड़े है, जिनमें कुछ को अभिव्यक्त कर रहा हूँ। आचार्य श्री तुलसी के आचार्य काल में नई-नई अनेक प्रवृतियां शुरू हुई। विकास की नई दिशाएं उद्घाटित हुई। जन संपर्क का क्षेत्र बहुत बढ़ गया। लाखों व्यक्ति उनके संपर्क में आए। पर, अन्य प्रवृत्तियों के साथ शैक्ष (नव दीक्षित) साधुओं में आचार-विचार के संस्कारों का सिंचन करने में उनकी सतत जागरूकता रहती थी। वे इसे अन्य कार्यों की अपेक्षा प्राथमिकता देते थे। दीक्षा ग्रहण करने के साथ मुनि का नया जन्म होता है। इसलिए आगम वाणी में उसे द्विज कहा जाता है। नव दीक्षित मुनि को शैक्ष कहा जाता है। शैक्ष मुनि के लिए भोजन से भी संस्कारों के अमृत का सिंचन ज्यादा जरूरी है। आचार्य श्री तुलसी संस्कारों के साथ करूणा रस बरसाते थे, जिससे शैक्ष का मनोबल बढ़ जाता। इससे साधुत्व के प्रति उसकी आस्था ओर गहरी हो जाती तथा सर्दी-गर्मी के परीषहों को सहने

का उत्साह और सामर्थ्य जागृत हो जाता। दीक्षा लेने के बाद मैंने आचार्य श्री के साथ पहला चतुर्मास श्रीडूंगरगढ़ किया। उसके बाद पौष मास का समय मोमासर गांव में बीता। उस समय सर्दी का प्रकोप बहुत तीव्र था। उन दिनों मैं गुरूदेव के चरण स्पर्श कर सोता तथा प्रातः जागकर सबसे पहले चरण स्पर्श कर स्वाध्याय में संलग्न होता। एक दिन सोने से पूर्व मैंने चरण स्पर्श किया तब आचार्य प्रवर ने पास में पड़े एक शॉल को हाथ में लेकर कहा-सर्दी लगती हो तो यह शॉल ले लो। मैंने निवेदन किया—गुरूदेव! मुझे सर्दी नहीं लगती। मैं उठकर मेरे आसन पर जाकर सो गया। पर, आचार्य श्री के वात्सल्य रस से मेरा मन आप्लावित हो गया। प्रातः उठकर जब में वन्दन करने गया तो शीत परीषह को सहन करने के लिए तीन आगम सूत्रों पर ध्यान लगाने की प्रेरणा दी। वे तीन सूत्र थे।

'किमेग राइं करिस्सइ' एक रात को नींद नही आई तो क्या होगा।

'तवोत्ति अहियासए' इस परीषह को तपस्या समझकर सहन करो।

'धम्मोत्ति किच्चा' इस परीषह को धर्म समझकर सहन करो।

यदि मैं समभाव से सहन करूँगा तो मेरे कर्म कटेंगे। जिस प्रकार भूखा रहना तपस्या है, उसी प्रकार सर्दी-गर्मी के कष्टों को सहना भी तपस्या है। 'मन के जीते-जीत है, मन के हारे-हार' साधु का मनोबल सदैव ऊँचा रहना चाहिए।

आचार्य श्री तुलसी की इन शिक्षाओं का मेरे मानस पर बहुत प्रभाव पड़ा।

आचार्य श्री की सन्निधि में दूसरा चतुर्मास राजगढ़ में हुआ। उस समय धर्मस्थान में अधिकतर अंधेरा रहता था। लाइट बहुत कम जलती थी। रात्रि में कंठस्थ ग्रंथों का वहां मैंने पुनरावर्त्तन बहुत किया। एक रात्रि में पूरी नाममाला का पुनरावर्त्तन कई बार किया। उस समय कंठस्थ करने और उसका पुनः स्मरण करने की हर समय लगन रहती थी। मेरे सोने का स्थान आचार्य श्री के सामने ही था। मैं बोल-बोल कर स्वाध्याय करता था। एक दिन स्वाध्याय करते-करते ही मैं सो गया। आचार्य श्री ने मुझे देख लिया। उन्होंने उसी समय एक संतों को भेजकर बुलाया और कहा-स्वाध्याय करना अच्छा है, पर, सोने से पहले नमस्कार महामंत्र का जप करना चाहिए। उसके बाद दिन भर का लेखा-

जोखा देखना चाहिए, कोई गलती हुई हो तो 'मिच्छामि दुक्कड़ं' लेना चाहिए। शैक्ष अवस्था में आचार्य श्री द्वारा संस्कार-सिंचन के ऐसे अनेक प्रसंग मेरी स्मृति में है। मेरी तरह यथासंभव हर शैक्ष मुनि को संस्कारों का प्रसाद मिलता रहता था।

साधु-साध्वियों के अध्ययन को सर्वांगीण और युगानुकूल बनाने के लिए आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से योग्य योग्यत्तर व योग्यत्तम के रूप में सप्तवर्षीय पाठयक्रम का निर्माण हुआ। पाठयक्रम के संचालन और परीक्षण में मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) व मुनि मीठालालजी (संघमुक्त, संत अमिताभ जी) का विशेष योगदान रहा। इस पाठयक्रम के आधार पर अध्ययन की एक महत्वपूर्ण धारा विकसित हुई। इसके साथ ही पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्थापना हुई। इससे दीक्षा के पूर्व मुमुक्षु भाई बहिनों की साधना और शिक्षा का क्रम व्यवस्थित हो गया। इससे धर्मसंघ को बहुत लाभ मिला। यह आचार्य श्री तुलसी की दूरदर्शिता और अन्तः प्रेरणा का परिणाम है।

आचार्य श्री तुलसी की जीवन गाथा के साथ पाठयक्रम निर्माण की कम चर्चा होती है। पर, मेरे अनुभव से धर्मसंघ के विकास में इसका बहुत योग है। इस पाठयक्रम से मेरे जैसे अनेक साधु-साध्वियों के जीवन में दर्शन, आगम व संस्कृत भाषा आदि कई विषयों के अध्ययन की अच्छी भूमिका बनी, ऐसा मेरा अनुभव है।

सप्तवर्षीय अध्ययन के बाद आचार्य श्री ने मुझे अणुवत का कार्य करने के लिए नियुक्त किया। कई वर्ष मैंने आचार्य श्री के सान्निध्य में रहते हुए कार्य किया। वि.सं. २०१२ का चतुर्मास मुझे अग्रगण्य बनाकर जलगांव में कराया। वहां अणुव्रत का व्यापक कार्य हुआ। फिर सं. २०१३ का चतुर्मास वापिस गुरूदेव के सान्निध्य में किया। उस वर्ष के मर्यादा महोत्सव के बाद आचार्य श्री फाल्गुन मास में चुरू विराज रहे थे। वहां देवेन्द्र भाई कर्णावट आए। उन्होंने राजसमन्द के गांवों में अणुव्रत का सघन कार्य करने की योजना आचार्यवर के समक्ष प्रस्तुत की। उस योजना के लिए मुझे राजसमंद भेजने का निवेदन किया। आचार्य श्री ने चिन्तन कर मुझे याद फरमाया और राजसमंद के गांवों के कार्य करने का संकेत दिया। यह सुनकर मेरा मन थोड़ा उदास सा हो गया। मैंने गुरूदेव से निवेदन किया—गुरूदेव! मैं आगम व दर्शन का ठोस अध्ययन करना

तथा साहित्य लिखना चाहता हूँ। मेरा क्रम ठीक चल रहा है, मेरा प्रयास बीच में रह जाएगा। आचार्य श्री ने मुझे पास बिठाया और समझाया पुस्तकों के ज्ञान से भी जनता के मानस को पढ़ना अधिक उपयोगी है। आगे फरमाया—बड़े काम करने के लिए प्रारंभ छोटे काम से करना चाहिए। गांधी जी के आश्रम में कोई शिक्षित व्यक्ति जाता तो पहले सफाई का काम कराते थे। इसलिए मैंने सोचकर निर्णय लिया है। आचार्य श्री का संकेत जानकर मैंने निवेदन किया—मेरे लिए आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैंने मेरी भावना आपके चरणों में रख दी, मेरे भविष्य की चिंता आपको अधिक है। इतने निवेदन के बाद मैं वहां से उठकर चला गया। दूसरे दिन व्याख्यान में मेरा विहार राजसमंद की ओर घोषित कर दिया। लगभग चार वर्ष का मेरा प्रवास मेवाड़ में हुआ। अधिकतर समय छोटे गांवों में बीता। वहां जो कार्य किया, उस की चर्चा करने का यहां प्रसंग नहीं है। आचार्य श्री तुलसी की नियोजन कला कितनी अद्‌भुत थी यह देखने की बात है। उनकी वाणी में जादू था। 'अयोग्यः पुरूषो नास्तिः योजकस्तत्र दुर्लभः' के अनुसार जिसका जहां उपयोग करना होता उसे वहां नियोजित करते और उसके लिए सामने वाले का मानस बनाने में तो वे सिद्धहस्त थे।

चार वर्ष मेवाड़ में रहने के बाद गुरूदेव ने मेरा उपयोग बड़े-बड़े नगरों-महानगरों में किया। उन सभी क्षेत्रों में मेवाड़ के चार वर्षों में जन-मानस को पढ़ने की जो अनुभव प्राप्त हुए, उसका लाभ मुझे सभी स्थानों पर मिला। आचार्य श्री के साथ रहकर कार्य करने में तथा अन्यत्र विहार में कार्य करने का अनुभव अलग होता है।

आचार्य श्री तुलसी की दृष्टि के अनुकूल कोई कार्य करता तो उस पर वात्सल्य रस की धारा बहाते थे। ऐसे मैंने कई अनुभव किए। मैंने जब मेवाड़ में एक चतुर्मास पूरा कर लिया तब आचार्य श्री का संदेश मिला—एक बार यहां दर्शन कर लो। वहां का कार्य आगे भी जारी रखना है। वहां से विहार कर क्रमशः हमने सरदारशहर में दर्शन किए। उस दिन व्याख्यान में मुझे बोलने का समय दिया। आचार्य श्री ने कृपा पूर्ण उद्गारों से मेरा उत्साह बढ़ाया इसके साथ १८ हजार गाथाओं से मुझे पुरस्कृत किया। वि. सं. २०१० में जोधपुर चतुर्मास में ध्वनिवर्धक यंत्र के बिना लगभग ५-७ हजार की उपस्थिति में जब मेरा भाषण हुआ तब १५० व्यक्तियों ने खड़े होकर अणुव्रती के रूप में नाम

लिखाए। मेरे जीवन में इतनी बड़ी उपस्थिति में पहला भाषण था। आचार्य श्री ने ५१ कल्याणकों का पुरस्कार दिया। हिंदी, संस्कृत भाषाओं के लिए कई बार पुरस्कृत किया।

छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में अग्नि परीक्षा पुस्तक के कारण आचार्य श्री तुलसी का तीव्र विरोध हुआ। रायपुर चतुर्मास कराने में मेरी मुख्य भूमिका थी। जब विशाल प्रवचन पंडाल जल रहा था तो उसकी ऊँची लपटें आचार्य श्री के बैठने के स्थान तक पहुंच रही थी। आचार्य श्री समभाव से विराजे हुए सारा दृश्य देख रहे थे। मैं भी पास में बैठा हुआ था। मैंने सोचा—मेरे कारण यह चतुर्मास हुआ और आचार्य श्री को इतना कष्ट सहन करना पड़ा। उस स्थिति को मैं सहन नहीं कर सका। मैं भावविह्‌ल होकर रोने लगा।

वहां प्रायः सभी संत एकत्रित हो गए। आचार्य श्री ने मेरे सिर पर हस्तकमल रखते हुए भाईजी महाराज से कहा—''मुनि राकेश ने सिंह मुनि का स्मरण करा दिया। भगवान महावीर की वेदना के समाचार सुनकर सिंह मुनि रोने लगे, वे इस बात को सहन नहीं कर सकें। इसी प्रकार मुनि राकेश मेरे कष्ट को सहन नहीं कर सका।''

आचार्य श्री तुलसी ने मेरे जैसे अनगिनत लोगों को चक्षु प्रदान किए, जीवन की कला सिखाई, सब कुछ दिया। आज भी गुरूदेव की कृपा के वे पल याद आते हैं तो मन भावविभोर हो जाता है। मेरे लिए तो आचार्य श्री तुलसी खुदा या भगवान से कम नहीं थे। इसलिए मेरी स्मृति में ये ही स्वर प्रतिध्वनित होते है—

जिन्हें जरूरत हो वे करे, ओर खुदाओं की तलाश।
हम तो इसी शख्स को, दुनिया का खुदा कहते है।।

महार्घ रत्नों के अन्वेषक

''न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्'' इस संस्कृत सुभाषित के अनुसार रत्न किसी की खोज नहीं करता, कुशल परीक्षक उसकी खोज करते है। आचार्यश्री तुलसी सूक्ष्म और पारदर्शी दृष्टि के धनी थे। उन्होंने अपनी सूक्ष्मदर्शी आंखों से तीन महार्घ रत्नों का अन्वेषण किया, उनकी उज्ज्वल और आकर्षक आभा अन्तर्निहित थी, उन्होंने उनकी मूल्यवत्ता और संभावना को समझा, परखा और कुशल कला से तराशा। वे तीन रत्न हैं—आचार्यश्री महाप्रज्ञजी, आचार्यश्री महाश्रमणजी और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी।

तेरापंथ के अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के निर्देशानुसार दीक्षित होते ही मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) तुलसी पोशाल में सम्मिलित हो गए। उनका समग्र प्रशिक्षण मुनि तुलसी (आचार्य तुलसी) के मार्गदर्शन में हुआ। यद्यपि बिल्कुल प्रारंभ में वे अपने सहपाठियों में मंदबुद्धि समझे जाते थे। पर, अपने विद्यागुरु का वात्सल्य सबसे अधिक उनको मिला, यह सर्वविदित है। इसका कारण उनमें छिपी उज्ज्वल संभावनाएं थी। यद्यपि इससे उनके सहपाठियों में अन्यथा भाव भी उत्पन्न हुआ जिसके कारण आचार्य तुलसी को सहन भी करना पड़ा।

आचार्यश्री तुलसी ने धर्मसंघ को विभिन्न आयाम प्रदान किए। पर, उनके प्रारंभ के पूर्व वे मुनिश्री नथमलजी से चिंतन-मंथन अवश्य करते थे। दोनों में सहमति होने के बाद ही उन्हें क्रियान्वित किया जाता। प्रसिद्ध जैन विद्वान दलसुख भाई मालवणिया कहते थे—आचार्यश्री तुलसी और मुनि नथमलजी जैसी गुरु शिष्य की जोड़ी इतिहास में दूसरी मिलनी दुर्लभ है। धर्मसंघ की व्यवस्थाओं में जो भी परिष्कार और परिवर्तन हुए वे अनेक बहुश्रुत साधुओं की संगोष्ठी में चर्चित होकर निर्णीत हुए। संगोष्ठियों में चर्चित होने के पूर्व

आचार्यश्री और मुनिश्री नथमलजी में सहमति होती थी। ऐसा मैंने कई प्रसंगों पर अनुभव किया।

मुनिश्री नथमलजी के रूप में उस महार्घ रत्न की तेजस्वी आभा से प्रसन्न और प्रभावित होकर आचार्यश्री तुलसी ने उन्हें पहले 'महाप्रज्ञ' अलंकरण से संबोधित और सम्मानित किया और बाद में अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। जब आचार्य महाप्रज्ञ बाल्यावस्था में थे तब उनके सहज भोलेपन को देखकर पूज्य कालूगणी उन्हें प्यार से बंगू, बल्कलचीरी आदि शब्दों से पुकारते। पर, मुनि तुलसी ने भोलेपन में भी उनमें अन्तर्हित संभावनाओं को पहचान लिया था, ऐसा अनुभव होता है। जौहरी परखने और तराशने में कितना ही दक्ष हो, सभी चमकीले पत्थर रत्न और हीरे नहीं बन सकते। तुलसी ने महाप्रज्ञ के लिए जन्म लिया, महाप्रज्ञ ने तुलसी के लिए जन्म लिया। यदि तुलसी न होते तो महाप्रज्ञ न होते, यदि महाप्रज्ञ नहीं होते तो तुलसी के स्वप्न साकार कैसे होते? आचार्य तुलसी कहते थे—'तुलसी में महाप्रज्ञ देखो, महाप्रज्ञ में तुलसी को देखो', यह दोनों के उत्कृष्ट अद्वैत का सूचक था।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने मुनि दीक्षा ग्रहण करने के बाद पहली बार आचार्यश्री तुलसी के दर्शन श्रीडूंगरगढ़ में किए। उनके पवित्र आभामंडल से वे बहुत प्रसन्न हुए। उसी दिन उनका ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया। आचार्यश्री महाश्रमणजी की सहजता और पवित्रता से उनमें महात्मा का दर्शन होता है। महात्मा कौन होता है?

यथा चितं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया।
त्रितये नों विसंवादो, महात्मा प्रोच्यते नरः।।

जिसके मन, वचन और शरीर में एकरूता है, विसंवाद नहीं है, वह महात्मा है। आचार्यश्री महाश्रमणजी के जीवन में यह नैसर्गिक गुण है। आचार्यश्री तुलसी इससे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—साधु हो तो महाश्रमण जैसा हो। आचार्यों के ऐसे उद्‌गार सत्यपूत और तपःपूत महापुरुषों के लिए ही संभव है। आचार्यश्री महाश्रमणजी प्रारंभ में मौन प्रिय थे, एकान्त प्रिय थे। अध्ययन और स्वाध्याय में निमग्न रहते थे। आचार्यश्री की सेवा में अहर्निश जागरूक रहते थे। आचार्य तुलसी महार्घ रत्न को अपने अनुभवों और

शिक्षाओं से तराशते रहते थे। आचार्य तुलसी ने उन्हें चार तीर्थ की विशाल उपस्थिति में उन्हें 'महाश्रमण' अलंकरण से सुशोभित किया। जिससे चार तीर्थ में उनका व्यक्तित्व, श्रद्धा और आकर्षण का केन्द्र बन गया। जो रत्न छुपा हुआ था, वह तेरापंथी समाज में नहीं, सारे जैन समाज के लिए आस्था पुंज बन गया।

आचार्यश्री महाश्रमणजी निस्पृह व्यक्तित्व के धनी हैं। उन्होंने पद से अधिक साधुत्व को महत्त्व दिया है। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी से निवेदन किया—जिस प्रकार द्वितीय आचार्यश्री भारीमालजी के समय मुनि खेतसीजी का नाम युचाचार्य पद के पत्र में नाम लिखने पर भी नहीं रखा, यदि 'महाश्रमण' अलंकरण वापिस लेकर मेरे पर भी प्रयोग कराये तो मैं तैयार हूं। उनका यह निवेदन स्वीकार नहीं हुआ। एक बार सिंवाची-मालानी क्षेत्र की यात्रा कर महाश्रमणजी ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए। उस क्षेत्र के प्रमुख श्रावकों ने यात्रा की सफलता का वर्णन किया। उपसंहार में आचार्यश्री ने कहा—मैं महाश्रमण की इस यात्रा से बहुत हर्षित हूं। मैं इसे आज कुछ पुरस्कार देना चाहता हूं। सबकी आंखें आचार्यश्री की ओर केन्द्रित हो गई। सबने सोचा—आज महाश्रमणजी को विशेष सम्मानित किया जाएगा। आचार्यश्री ने कहा—यदि महाश्रमण की सुविधावादी होने की किसी ने शिकायत कर दी तो इसे तीन दिनों तक प्रतिदिन तीन-तीन घंटे खड़े-खड़े ध्यान करना होगा। यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित थे। पर, यह उस छुपे रत्न को तराशने का प्रयोग था, जिससे उसकी कांति में और अधिक चमक आए।

आचार्य तुलसी ने साध्वी कनकप्रभाजी के रूप में छुपे हुए महार्घ रत्न को पहचाना और लगभग ५५० साध्वियों के विशाल संघ की साध्वी प्रमुखा के पद से उन्हें अंलकृत किया। उस समय उनकी दीक्षा पर्याय को लगभग ११ वर्ष का समय ही सम्पन्न हुआ था। ४५० करीब साध्वियां उनसे रत्नाधिक थी, दीक्षा पर्याय में बड़ी थी। वयोवृद्ध, अनुभववृद्ध और ज्ञानवृद्ध साध्वियों की विशाल पंक्ति विद्यमान थी। इस स्थिति में इस पद के लिए साध्वी कनकप्रभाजी के नाम की उद्घोषणा से सारे समाज में हर्ष मिश्रित विस्मय की लहर दौड़ गई। पर आज आचार्यश्री तुलसी के इस दूरदर्शिता पूर्ण सुविचारित निर्णय की जन-जन मुक्त कन्ठ से प्रसंशा करते हैं। सारे जैन समाज के साध्वी

समाज में साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी को श्रद्धाभाव से आदर्श के रूप में माना जाता है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की वाणी और लेखनी से निसृत वाग्धारा को आत्मसात् कर हर व्यक्ति को उनकी वाणी और लेखनी में वाग्देवी (सरस्वती) के निवास का अहसास होता है। उन्होंने अपने प्रतिभा कौशल से जो साहित्य का भंडार भरा है वह उनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचायक है। साधारण व्यक्ति इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। शिक्षित और प्रबुद्ध सैकड़ों साध्वियों का नेतृत्व पूर्व की अपेक्षा अधिक समय-सापेक्ष और श्रम-सापेक्ष है। परिवार में दो शिक्षित पुत्रवधूओं को संभालना कितना कठिन है, यह आज की सास से जाना जा सकता है। सफल नेतृत्व के लिए सबकी अपेक्षाओं और कठिनाइयों का समाधान खोजना और प्रदान करना आवश्यक होता है। इस स्थिति में सहजता से इस भार का सफलता से निर्वहन करते हुए साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने साहित्य की जो सुरसरी प्रवाहित की है वह आश्चर्यजनक और आमोदप्रद है। वे मूर्धन्य दार्शनिक, साहित्यकार और कुशल कवयित्री है। इसके साथ उन्होंने आचार्यश्री तुलसी की ऐतिहासिक यात्राओं के अनेक महाकाय ग्रंथ लिखकर मानवता को महान् देन दी है। आचार्य तुलसी की दैनिक डायरी के आधार पर २५ विशाल ग्रंथों में उनकी आत्मकथा लिखकर इतिहास के पृष्टों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित होने वाला अमर काम किया है, इसके साथ उनका नाम भी अमर हो गया है। उनकी यह वाग्धारा युग-युग तक प्रवाहित होती रहे। मंगलकामना।

आचार्यश्री तुलसी महार्घ रत्नों के अन्वेषक थे। उन्होंने सैकड़ों साधु-साध्वियों की प्रबुद्ध सेना तैयार की जो कि एक अलग निबन्ध या ग्रंथ का विषय है।

विलक्षण अवदान

जब आचार्य श्री तुलसी ने आचार्य पद का दायित्व ग्रहण किया तब युग एक नई करवट ले रहा था। समाज में शिक्षा का विकास हुआ इसके साथ ही चिन्तन की विभिन्न धाराएँ प्रस्फुटित हुईं। इस स्थिति में धर्मसंघ को अधिक सक्षम व उपयोगी बनाने का चिन्तन आचार्यश्री के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ। यह बहुत आवश्यक था। आज तेरापंथ धर्मसंघ में हमें जो नई तरुणिमा का दर्शन हो रहा है यह आचार्य तुलसी के दूरदर्शितापूर्ण साहसिक चिन्तन का ही परिणाम है। यद्यपि हर नए चिन्तन के प्रसंग पर अंतरंग और बहिरंग विरोधों का सामना करना पड़ा। पर आचार्य तुलसी का आत्मबल अनुपम था। व्यर्थ की आलोचनाओं और प्रतिक्रियाओं से उनके चरण कभी नहीं रुके।

आचार्य श्री तुलसी की अहिंसा और समतापरायण नीति के कारण जो प्रारम्भ में नए चिन्तन के विरोधी और आलोचक थे, वे भी धीरे-धीरे समर्थक और समर्पित हो गए। आचार्यश्री के जीवन में चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति का अद्‌भुत संगम था। वे जो भी विचार करते, उसे साकार रूप देने के लिए सुनियोजित प्रयास करते थे। उनका आत्मविश्वास शब्दों से ही नहीं, हर आकार-प्रकार और व्यवहार से बोलता था। उनका सान्निध्य पाकर निराशा से जड़ बने पत्थर-हृदय में भी नए प्राण का संचार हो जाता था। उन्होंने आचार्य पद का दायित्व ग्रहण करने के बाद धर्म संघ को नाना प्रकार की नई दिशाएँ दी, अनेक नए निर्णय किए। यदि उन अध्यायों की फेहरिस्त बनाई जाए तो बहुत लम्बी हो सकती है। 'समण श्रेणी' का निर्णय भी उन नई दिशाओं में एक है। जिस प्रकार हर नए विचार के साथ विरोध के छोट-मोटे तूफान उपस्थित हुए, उसी प्रकार 'समण श्रेणी' की घोषणा के साथ भी हुआ।

आचार्य तुलसी ने 'समण श्रेणी' के कार्यक्रम का संकेत प्रारम्भ में

'विलक्षण दीक्षा' की घोषणा के साथ किया। नकारात्मक दृष्टि से सोचने वाले विरोधी लोगों ने 'विलक्षण' शब्द को विकृत बना कर 'बिना लक्खण' की दीक्षा कह कर उपहास किया। पर जब अपनी जन्मस्थली में अपने ही पावन जन्मदिवस पर ६ मुमुक्षु बहिनों को 'समण दीक्षा' प्रदान की तो सारा ऊहापोह शांत हो गया। जिस प्रकार आचार्य तुलसी के हर नए स्वप्न को साकार बनाने में आचार्य श्री महाप्रज्ञ का महान् योगदान रहा है, उसी प्रकार 'समण श्रेणी' की कल्पना को मूर्त्त रूप देने में भी उनका विशिष्ट योगदान रहा है। आचार्य तुलसी ने आचार्य भिक्षु की भावनाओं और आदर्शों का चित्रण करते हुए पूर्ण आत्म विश्वास के साथ लिखा है–

ज्यों ज्यों चरण बढ़ेंगे आगे, स्वतः मार्ग बन जाएगा,
हटना होगा उसे बीच से, जो बाधक बन आएगा।
रुक न सकेगी मुड़ न सकेगी, सत्य क्रांति की उज्वल धारा,
बढ़े चलें हम रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा।।

आचार्य तुलसी के जीवन में ये पंक्तियाँ पूर्णतया घटित होती थी। समण श्रेणी का यह अद्‌भुत वरदान जो समाज को मिला है यह आचार्यश्री के उस संकल्प बल का चमत्कार है।

कतिपय शिक्षित श्रावकगण वर्तमान युगीन परिस्थितियों में साधु-आचार में सुधार और बदलाव का अनुरोध आचार्य श्री तुलसी के समक्ष प्रस्तुत करते थे ताकि साधु-साध्वियों का सान्निध्य सर्वत्र प्राप्त हो सके। पर गुरुदेव मौलिक आचार व्यवस्था में परिवर्तन के पक्षधर नहीं थे। साधु-साध्वियों के लिए विद्युतचालित वाहनों का उपयोग मान्य नहीं था। इस स्थिति में उनके लिए विदेश यात्रा का प्रश्न ही नहीं था। देश में भी सुदूरवर्ती स्थानों पर वे पहुँच नहीं सकते थे। आज श्रद्धालु परिवार देश-विदेश में चारों ओर फैल गए हैं। उनकी भावनाओं की पूर्ति के लिए तथा अन्य विविधमुखी अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए साधु और श्रावक के मध्य एक तीसरी श्रेणी का आविष्कार होना समय की मांग थी। इस विषय पर आचार्य श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ के मानस में वर्षों तक गम्भीर चिन्तन चला। 'समण श्रेणी' उसी चिन्तन का परिणाम है। 'विलक्षण दीक्षा' की घोषणा के साथ उसी दीक्षा का संकेत समाज को दिया गया था।

आज 'समण दीक्षा' के प्रति सबके मन में कृतज्ञता और आकर्षण का भाव है। पर, जिन छः मुमुक्षु साधिकाओं ने इस दिशा में अपना पहला संकल्प और समर्पण प्रकट किया, वे तथा उनके पारिवारिक जन भी धन्यवाद के पात्र हैं। 'समण श्रेणी' के भव्य प्रासाद को खड़ा करने में उनकी भूमिका नींव के पत्थर के समान है।

आचार्य श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान और अहिंसा समवाय आदि अनेक महत्त्वपूर्ण अवदान प्रदान किए हैं। इन आयामों के व्यापक प्रसार से हर धर्म और वर्ग के लाखों लोग भावनात्मक रूप से धर्मसंघ के साथ जुड़े हैं। उनके सम्पर्क को आगे बढ़ाने के लिए 'समण श्रेणी' जैसी कल्पना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार समय-समय पर अहिंसा, अध्यात्म, शाकाहार, नैतिक शिक्षा, साम्प्रदायिक सौहार्द तथा पर्यावरण आदि से सम्बन्धित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन भी होते रहते हैं। आयोजक लोग ऐसे अवसरों पर आचार्य प्रवर के मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते हैं तथा उनके प्रतिनिधि की उपस्थिति का आग्रह भी करते हैं। पर साधु-साध्वियों का हर स्थान पर पहुँचना कठिन होता है। समण-समणियों द्वारा उस अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है।

यदि समण श्रेणी आध्यात्मिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से सक्षम और समृद्ध नहीं होती तो वह अधिक उपयोगी और आकर्षक नहीं हो सकती थी। समण श्रेणी के निर्माण और विकास में आचार्यश्री तुलसी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ, आचार्य श्री महाश्रमण तथा साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की महान् श्रम साध्य तपस्या रही है। समण श्रेणी में प्रवेश के पूर्व साधक वर्षों तक अनुभवी संरक्षकों के निर्देशन में पारमार्थिक शिक्षण संस्था में साधना करते है। साधना के साथ-साथ ब्राह्मी विद्यापीठ में उनके अध्ययन का व्यवस्थित क्रम चालू रहता है। पारमार्थिक शिक्षण संस्था में संस्कार निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जो विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न साधक होते हैं उनका जैन विश्व भारती संस्थान में गहरा और उच्चस्तरीय अध्ययन होता है। समण श्रेणी में प्रव्रजित होने के बाद भी साधना और शिक्षा के विकास का क्रम आगे बढ़ता रहता है।

आज अन्य जैन सम्प्रदायों में भी समण श्रेणी जैसी कल्पना को मूर्त्त रूप देने का समय-समय पर चिन्तन होता है। इस विषय पर कई बार तेरापंथी

साधु-साध्वियों के साथ अन्य सम्प्रदायों के विचारशील साधुओं और श्रावकों का विचार विमर्श होता है। एक उदारमना विचारक मुनिजी ने इस विषय पर मेरे साथ भी जिज्ञासापूर्ण चर्चा की। उनका मुख्य प्रश्न था—समण श्रेणी के सदस्यों का इतना व्यवस्थित निर्माण कैसे होता है? उनके इस प्रश्न पर मैंने पूर्वोक्त क्रम पर विस्तार से प्रकाश डाला। तब उन्होंने कहा—हम लोग भी समण श्रेणी जैसी साधना की कक्षा का निर्माण करना चाहते हैं। पर, जब तक आप के संघ जैसी निर्माण की पद्धति विकसित नहीं होगी, तब तक इस प्रकार की कोई योजना सफल और उपयोगी नहीं हो सकती। आगमवाणी में कहा गया है—कुछ लोग शीलसम्पन्न होते हैं पर प्रज्ञासम्पन्न नहीं होते। कुछ प्रज्ञासम्पन्न होते हैं पर शीलसम्पन्न नहीं होते तो कुछ दोनों से सम्पन्न होते हैं, कुछ दोनों से शून्य होते हैं। समण श्रेणी का यह भवन शील की सबल नींव पर आधारित है और प्रज्ञा के विविधमुखी आकर्षणों से सुसज्जित है। इसके निर्माण में दोनों का सुखद समन्वय हुआ है। समण श्रेणी के साथ विलक्षण शब्द का प्रारम्भ से ही सम्बन्ध रहा है। जब तीन दशकों के इतिहास का सिंहावलोकन करते हैं तो इसके विलक्षण परिणामों को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव होता है। समण श्रेणी में अधिक संख्या समणी वर्ग की है। अनेक समणियों ने आगम, दर्शन, मनोविज्ञान व योग साधना आदि में विशिष्ट योग्यता प्राप्त की है। साहित्य के क्षेत्र में भी उनके द्वारा उल्लेखनीय कार्य हुआ है। संस्कृत, प्राकृत व अंग्रेजी भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार है। अनेक समणियों ने पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की है। अहिंसा, अध्यात्म व दर्शन आदि विषयों पर आयोजित विशिष्ट सम्मेलनों में अपने वक्तव्यों व शोध पत्रों के द्वारा गहरा प्रभाव उत्पन्न किया है। आगम साहित्य के सम्पादन में भी उन्होंने अपने प्रतिभा-कौशल का सुन्दर उपयोग किया है। कई समणियाँ जैन विश्व भारती तथा ब्राह्मी विद्यापीठ में अध्यापन का दायित्व भी निभा रही हैं। जहाँ भी साधु-साध्वी नहीं पहुँच पाते हैं वहाँ उनका उपयोग होता है और वे कुशलता से अपना दायित्व सम्भालती हैं। पश्चिम की भौतिकवादी चकाचौंध में रहने वाले परिवारों में समण श्रेणी ने सुन्दर प्रभाव उत्पन्न किया है।

नेतृत्व कौशल

आचार्यश्री तुलसी के जीवन में नेतृत्व का गुण नैसर्गिक था। वे प्रारंभ से ही तेजस्वी और विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। वे बचपन में अपने विद्यालय में मोनिटर थे। इग्यारह वर्ष की अवस्था में वे मुनि जीवन में दीक्षित हुए। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी ने तभी उनके भीतर छिपी नेतृत्व की संभावना का अनुभव कर लिया था। १६ वर्ष की उम्र में ही नवदीक्षित साधुओं के अध्यापन और निर्माण का दायित्व उनके कंधों पर आ गया। जो भी प्रतिभाशाली बालक दीक्षित होते उनमें संस्कार सिंचन के लिए आचार्यश्री कालूगणी उन्हें सौपते। उनका अध्ययन उनके मार्गदर्शन में होता। यद्यपि छात्रों और अध्यापकों की उम्र में अधिक अन्तर नहीं था। फिर भी छात्रों ने मनोभाव से मुनि तुलसी के अनुशासन का पालन किया। यह उनकी नैसर्गिक नेतृत्व क्षमता का परिचायक है। अनुशासन के प्रभाव से उन छात्रों ने जो विकास किया उससे सारा धर्मसंघ गौरवान्वित हुआ।

तेरापंथ की परम्परा के अनुसार आचार्य अपने उत्तराधिकारी का निर्णय करते हैं और इसके लिए वे जागरूकता से चिन्तन करते रहते है। ऐसा माना जाता है, मुनि तुलसी की दीक्षा के बाद आचार्यश्री कालूगणी अपने उत्तराधिकारी के निर्णय के लिए निश्चिन्त हो गए। जब आचार्यश्री कालूगणी का स्वर्गवास हुआ तब मुनि तुलसी की उम्र २२ वर्ष की थी। अपने स्वर्गवास के तीन दिन पूर्व उन्होंने मुनि तुलसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। उनके स्वर्गवास के बाद वे आचार्य बन गए। जब आचार्य श्री तुलसी आचार्य बने तब संघ में उनसे दीक्षा और उम्र में बड़े बहुत साधु थे। पर उनके तेजस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व और नेतृत्व से सारा संघ प्रभावित और श्रद्धानत था। सफल नेतृत्व के लिए संस्कृत पद्य में कहा है—''वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि

कुसुमादपि'' नेता के लिए वज्र के समान कठोर और कुसुम के समान कोमल होना जरूरी है। आचार्यश्री के जीवन में इन दोनों रूपों का दर्शन होता था। वे किसी की दुष्प्रवृत्ति के प्रतिकार के लिए वज्र के समान कठोर थे। इसी तरह सत्प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए फूल से कोमल थे। उनमें लाखों व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधने की अद्‌भुत शक्ति थी। वे भारतीय परम्परा के इस सूक्त 'गुरु कुम्हार' के प्रतीक थे। उन्होंने अपने कमनीय कौशल से हजारों व्यक्तियों के जीवन-घट का निर्माण किया। बाहर से अनुशासन की चोटें करने के बावजूद वे सदा करुणा रस से सने अपने हाथ भीतर रखते थे। यही कारण है उनके तेजस्वी आभामंडल से हर कोई प्रभावित हो जाता था। मां की तरह वात्सल्य रस और पिता के समान अनुशासन एवं संरक्षण उनमें घुला मिला था। उनका बाहरी रूप सूर्य के समान तेजस्वी था पर भीतर से वे चन्द्रमा के समान निर्मल और शीतल थे।

आज व्यक्तिवादी अवधारणा बहुत बढ़ रही है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के प्रति अधिक चिंतन करता है। पर नेतृत्व की सफलता के लिए सामुदायिक चेतना का विकास जरूरी है, सबके प्रति संवेदनशील होना जरूरी है। आचार्यश्री तुलसी सारे धर्मसंघ को अपना शरीर मानते थे। सबके सुख-दुःख के प्रति उनकी संवेदनशीलता सहज परिलक्षित होती थी। वि.सं. २००५ में आचार्यश्री तुलसी का चतुर्मास छापर था। उस समय सौराष्ट्र में मुनिश्री डूंगरमलजी का चतुर्मास सौराष्ट्र में था। उन्होंने सोचा—हमारे शिष्य सौराष्ट्र में तपस्या कर रहे हैं तो हमें भी तपस्या करनी चाहिए। वहां साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना बहुत अधिक थी। इसलिए स्थान, आहार आदि की प्राप्ति में बहुत कठिनाई हो रही थी। जब आचार्यश्री को यह संवाद मिला तो उन्होंने खाद्य संयम का कठिन प्रयोग शुरू कर दिया। जब स्थिति की अनुकूलता का समाचार मिला तब वह प्रयोग संपन्न हुआ। अनेक संतों के मन में प्रयोग के कारण की बहुत जिज्ञासा थी। संपन्नता के बाद आचार्यवर ने उसका समाधान किया। सबने आचार्यप्रवर की संवेदनशीलता और करुणा परायणता का दर्शन किया। सन् १९६८ में मुंबई मर्यादा महोत्सव कर आचार्यप्रवर पूना पधारे। साध्वीश्री रूपांजी (सरदारशहर) पीछे से मुंबई रह गई थी। सड़क पर गुजरते हुए उनका एक्सीडेन्ट हो गया। एक्सीडेन्ट बड़ा था, साध्वीश्री के बहुत चोट आई। वे बेहोश हो गई, खून बहुत पड़ा, श्रावकों ने

स्थिति की नाजुकता देखकर साध्वीश्री को हॉस्पीटल में एडमिट करा दिया। जब साध्वीश्री को होश आया तो वह बहुत चिंतित हुई। उस समय तक संघ में चिकित्सा व्यवस्था स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने सोचा, आचार्यश्री क्या कहेंगे? आचार्यश्री के उपालम्भ और प्रायश्चित्त को लेकर मन में कई संकल्प-विकल्प उनके मानस में उठने लगे।

जब हम आचार्यवर का संदेश लेकर पूना से मुंबई पहुंचे तो साध्वीश्री के मन का भार हल्का हो गया। उन्होंने संदेश को सर पर लगाया और कई बार पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उनकी आंखें हर्ष से गीली हो गई। उन्होंने कहा—चोट तो मेरे लगी पर पीड़ा आचार्यप्रवर के हुई। मुझे आज यह अनुभव होता है। आज के युग में ऐसे दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने वाले आचार्य भाग्य से मिले है। अब मैं जल्दी स्वस्थ हो जाऊंगी।

साध्वीश्री के उद्‌गार सुनकर मुझे बाल्मीकि रामायण में शक्ति प्रहार से ठीक होने के बाद जो लक्ष्मण ने उद्‌गार प्रगट किए है, उनका स्मरण हो गया—''वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनोवयम्'' जब लक्ष्मण की मूर्च्छा टूटी तो पूछने पर लक्ष्मण ने कहा—वेदना तो राम के हुई है, मेरे तो केवल जख्म हुआ है।

आचार्यश्री तुलसी ने शिक्षा, संगठन व व्यवस्था के क्षेत्र में नए नए प्रयोग किए। आचार्यश्री ने साधुओं और श्रावकों को बैठने और चलने का प्रशिक्षण दिया। वे अनुशासित और पंक्तिबद्ध बैठने और चलने में विश्वास करते थे। जहां भी इसमें शिथिलता देखते वे सुधार का निर्देश देते। वि.सं. २००१ में आचार्यप्रवर के सान्निध्य में ''ॐ जय जय त्रिशलानंदन'' यह महावीर प्रार्थना रात्रि में शुरू हुई। वि.सं. २००६ में हिन्दी भाषा में ''महावीर तुम्हारे चरणों में'' यह प्रार्थना प्रारंभ हुई। जब आचार्यप्रवर दक्षिण में पधारे तब उसके स्थान पर अर्हत् वंदना का क्रम चालू हो गया। उसमें आगमवाणी का समावेश है। आचार्यप्रवर ने वन्दना और प्रार्थना में अन्तर करते हुए कहा—प्रार्थना में याचना है। जैन धर्म याचना में विश्वास नहीं करता? वन्दना में स्तुति है, अरिहंतों के गुणों का स्मरण है। इस तरह आचार्यश्री तुलसी ने धर्मसंघ में नाना प्रकार के नए प्रयोग किए। प्रातःकाल अणुव्रत प्रार्थना के कार्यक्रम का भी प्रारंभ हुआ। तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्य जो भी निर्णय करते हैं वह सारे भारत में क्रियान्वित हो जाता है।

आचार्यश्री तुलसी ने प्रवचन और तत्त्व निरूपण की शैली में बहुत परिष्कार किया। इससे तेरापंथ के प्रति फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण हो गया। बहुत से लोग तेरापंथ को अस्पृश्य मानते थे। आज वे उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यह आचार्यश्री तुलसी की दूरदर्शिता और प्रयोगधर्मिता का फल है। पहले कच्चे रास्तों में विहार होता था। पर जब डमर की सड़कें बनी तो साधु-साध्वियों के पैर छीलने लगे। इसलिए रबर के पदत्राण प्रारंभ हुए। चिकित्सा की व्यवस्था पर आचार्यश्री ने संतों की सहमति से एक व्यवस्थित विधि निश्चित की। यह धर्मसंघ पर आचार्यश्री का महान उपकार है। वर्तमान युग में इस विषय पर ध्यान देना आवश्यक था। आचार्यश्री तुलसी जैसे दूरदर्शी और आत्मबली आचार्य भाग्य से प्राप्त होते हैं।

जैन एकता के प्रबल पक्षधर

भगवान महावीर जैन परम्परा के चौबीसवें व अन्तिम तीर्थंकर थे। तीर्थंकर बनने के बाद करीब तीस वर्ष तक जनता को अहिंसा एवं अनेकान्तवाद का उपदेश दिया। महावीर ने चतुर्विध धर्मसंघ की स्थापना की। उन्होंने अपने संघ में सचेलक और अचेलक, दोनों ही प्रकार के श्रमणों को समान रूप से स्थान दिया था। अचेलक मुनि जिनकल्पिक और सचेलक मुनि स्थविरकल्पिक कहलाते थे। उनके अतिशयपूर्ण व्यक्तित्व के प्रभाव से प्रलंब काल तक दोनों शाखाएं समान रूप से साथ-साथ चलती रही। महावीर निर्वाण के बाद यह अभेद बहुत लम्बा नहीं चल सका।

सचेलक व अचेलक, दोनों में भेदवृत्ति शनैः-शनै पनपने लगी। यह भेद वीर निर्वाण ६०९ में श्वेताम्बर व दिगम्बर—इस विभाजन के रूप में सामने आया। इस विभाजन के बाद तो यह विभेद बढ़ता ही गया। श्वेताम्बर परम्परा में संविग्न व चैत्यवासी सम्प्रदाय की स्थापना हुई। यह विभेद इतना बढ़ा कि चौरासी गच्छ (सम्प्रदाय) हो गए। लोकामत, स्थानकवासी, तेरापंथ आदि सम्प्रदायों का भी जन्म हुआ। दिगम्बर परम्परा में भी अनेक सम्प्रदाय खड़े हुए।

जब सशक्त आचार्य होते हैं तो उनके प्रभाव से किंचित् मतभेद होते हुए भी ऐक्य बना रहता है। प्रखर आचार्यों की विद्यमानता के अभाव में मतभेदों की खाई चौड़ी हो जाती है। कुछऐसे सैद्धांतिक व पारंपरिक विभेद स्थापित हो जाते हैं जो शताब्दियां बीत जाने पर आग्रह का रूप ले लेते हैं। उस आग्रह पर समय-समय पर चोट तो होती है, पर वह समाप्त नहीं हो पाता। संवत्सरी एक ऐसा मुद्दा है जिस पर सभी समुदाय एकता की चाह तो रखते हैं, पर वे अपनी मान्यता के अनुरूप चाहते हैं। संवत्सरी के परिप्रेक्ष्य में जैन समुदाय के बीच

गहरे मत-मतांतर हैं, विविध मंतव्य हैं। आज भी संवत्सरी का एक होना बहुत बड़ी चुनौती है। इस संदर्भ में गंभीर प्रयास भी हुए हैं।

जैन धर्म वैज्ञानिक धर्म है। उसमें अंधविश्वासों और मिथ्या क्रियाकाण्डों के लिए अवकास नहीं है। उसके सिद्धान्तों और आदर्शों की वर्तमान युग में बहुत उपयोगिता और आवश्यकता है। इसके लिए जैन सम्प्रदायों में परस्पर एकता और सद्भावना का विकास जरूरी है। दो-तीन दशकों में एकता की दिशा में वातावरण में थोड़ा सुधार हुआ है, अभी और होने की जरूरत है। पहले दो सम्प्रदायों के मुनि मार्ग में मिल जाते तो एक दूसरे की ओर देखना भी पसन्द नहीं करते थे। एक दूसरे के प्रति घृणा और द्वेष की भावना फैलाने में शक्ति का दुरूपयोग होता था। दूसरे धर्मों के साधु-सन्यासियों के साथ व्याख्यान हो जाता था, पर दो भिन्न सम्प्रदायों के जैन मुनियों का साथ में व्याख्यान होने का सवाल ही नहीं था। समन्वय का संदेश वाहक अनेकान्तवाद जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त है। सभी जैन लोग सात्विक गर्व के साथ उसकी चर्चा करते थे, पर जीवन व्यवहार में उसका अनुसरण बहुत स्वल्प था। अपने विचारों के प्रतिपादन में आग्रह और उन्माद परिलक्षित होता था। यदि अनेकान्तवादी जीवनशैली का विकास होता तो चिन्तन में एकान्तवादी दृष्टि का प्रभाव नहीं होता। अनेकान्तवाद को आत्मसात् करने वाला विरोधी विचारों के प्रति उदार और सहिष्णु होता है। एक मुक्तक में कहा है -

विरोधी विचारों को सुनकर भी मन में खेद नहीं हो,
अनेकांत का उपासक आग्रह में कैद नहीं हो।
मानव-मानव में मतभेद स्वभाविक है पर,
मतभेद होने पर भी मन का भेद नहीं हो।।

मनुष्य मशीन का प्रोडक्शन नहीं है। वह एक चिन्तनशील प्राणी हैं, उसमें मतभेद स्वभाविक है। पर, मतभेद होने पर भी मन का भेद नहीं होना चाहिए। पूर्व-धारणाओं और संस्कारों का चिन्तन पर बहुत प्रभाव होता है। जो मनुष्य प्रारंभ से जैसा देखता है, सुनता है उसका मानस वैसा ही बन जाता है। जाकी रही भावना जैसी, सो देखई प्रभु मूरत तैसी का भी यही भावार्थ है। एक गांव में एक मेला लगा हुआ था। वहां पर एक वृक्ष की डाली पर चिड़ियां बोल रही थी। एक भाई ने कहा —चिड़िया क्या बोल रही है ? वहां पास में एक हिन्दु

सन्यासी था। उसने कहा-चिड़िया बोल रही है, राम लक्ष्मण दशरथ। मुसलमान मौलवी ने सुनकर कहा—सुभान तेरी कुदरत। सब्जी बेचने वाली मालिन ने कहा—गाजर मूली अदरक। किराने के व्यापारी ने कहा—चिड़िया बोल रही है, हल्दी मिर्चे ढ़क रख। यह कहानी काल्पनिक हो सकती है, पर यह एक अनुभूत सत्य है। हम जो भी ज्ञान करते है उसके साथ पूर्व धारणाओं और संस्कारों का रंग चढ़ जाता है। एकता और सद्भावना के विकास में पूर्वाग्रह बहुत बड़ा बाधक तत्त्व है। आज ऐसे आचार्यों, मुनियों और श्रावकों की आवश्यकता है, जो पूर्वाग्रह से मुक्त होकर सेतु की भूमिका अदा कर सके।

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी का एकता और सद्भावना के संस्कारों को पल्लवित और विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे रचनात्मक नीति के समर्थक थे, खण्डनात्मक नीति के नहीं। उन्होंने विरोध का उत्तर विरोध से नहीं दिया। जैन शासन की अप्रभावना नहीं हो, यह उनके जीवन में सदा लक्ष्य था, इसलिए उन्होंने शांति और समता से विरोध का विषपान किया। उनके सानिध्य में जैन एकता और समन्वय पर आधारित अनेक सम्मेलन आयोजित हुए। जिनमें अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों व साधु-साध्वियों ने भी भाग लिया। भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर सभी सम्प्रदायों को जोड़ने के लिए उन्होंने महासेतु की भूमिका निभाई। मुनि श्री विद्यानन्दजी और मुनि श्री सुशील कुमारजी ने निर्वाण शताब्दी के समारोह में कहा था —निर्वाण शताब्दी की सफलता का अधिकतर श्रेय आचार्य तुलसी को है। उस समारोह की आयोजना में कई अवरोध उत्पन्न हुए, पर उन्होंने अपनी समन्वय नीति से उनका निराकरण किया। निर्वाण शताब्दी समारोह से सभी जैन सम्प्रदायों में परस्पर निकटता बढ़ी, सद्भावना बढ़ी। सभी जैनों को मान्य एक ध्वज, एक प्रतीक व एक ग्रंथ का निर्णय हुआ। आचार्य श्री तुलसी की दो कल्पनाएं अधूरी रह गई-संवत्सरी महापर्व की एक तिथि का निर्णय तथा जैन हितों की रक्षा के लिए समन्वय मंच का गठन। उन्होंने इन्हें दोनों कल्पनाओं के लिए बहुत प्रेरणा की, पर अन्य सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने इन्हें आगे के चिंतन के लिए छोड़ दिया। यह दोनों कार्य जहां थे अभी भी वही हैं। इनमें थोड़ी भी प्रगति नहीं हुई है। आचार्य श्री तुलसी के मार्गदर्शन में उनकी जन्मभूमि लाड़नूं में जैन विश्व भारती संस्थान का प्रारंभ हुआ है उसका लक्ष्य जैनत्व का विकास तथा जैन

विद्वानों का निर्माण है। शिक्षा, साहित्य, शोध और सेवा उसके चार मुख्य अंग है।

जैन विश्व भारती के अन्तर्गत जैन विश्व भारती विश्व विद्यालय का निर्माण हुआ है। जैन समाज का वह एक मात्र विश्व विद्यालय है। समय-समय पर वहां देश-विदेश से विद्वान आते जाते रहते हैं। आचार्य श्री तुलसी के वाचना प्रमुखत्व में जैन आगमों का संपादन, हिन्दी भाषा में अनुवाद तथा विवेचन हुआ है। उनका प्रकाशन जैन विश्व भारती के द्वारा हुआ है।

आचार्य श्री तुलसी ने उत्तर से दक्षिण तक लगभग एक लाख किलोमीटर का पाद विहार किया। उनकी यात्रा से जैन शासन की अभूतपूर्व प्रभावना हुई। उनके प्रवचनों में हर जाति और वर्ग के लोगों ने लाभ लिया। उनमें अधिकतर लोगों ने जैन धर्म के आचार-विचार के प्रति जिज्ञासा का भाव रहता था। अपने प्रवचनों में उसकी जानकारी देते थे। हजारों व्यक्तियों ने व्यक्तिगत वार्तालाप कर जैन धर्म के प्रति अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया। आचार्य श्री के मार्गदर्शन में समणश्रेणी का बहुत सुन्दर विकास हुआ है। उसके माध्यम से विदेशों में भी जैन धर्म का व्यापक प्रसार हुआ है।

आचार्य श्री तुलसी ने धर्म को साम्प्रदायिक उन्माद से मुक्त किया। विभिन्न धर्मों के प्रमुख धर्मगुरू, विशिष्ट राजनेता, समाजसेवी, मनीषी साहित्यकार व पत्रकार उनके व्यक्तिगत संपर्क में आए। उनमें कई लोगों के मानस में जैन धर्म के प्रति बहुत शंकाएं थी। उनकी शंकाओं का निराकरण किया। डा. राधाकृष्णन् से राष्ट्रपति बनने के बाद मेरा वार्त्तालाप का प्रसंग आया। उन्होंने कहा —आचार्य श्री तुलसी जी से मिलने के पहले मेरे मन में जैन धर्म के प्रति बहुत भ्रान्तियां थी। मैंने मेरी पुस्तकों में उनका उल्लेख भी किया है, अब नए संस्करण छपेंगे तो मैं संशोधन करूंगा। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार कॉमरेड यशपाल ने भी यही बात कही। ऐसे अनेक उदाहरण प्रसिद्ध है। उन सबकी चर्चा इस लघु निबंध में संभव नहीं है। जैन शासन की एकता और प्रभावना के लिए उन्होंने जो कार्य किया उसकी संक्षिप्त झलक यहां प्रस्तुत है।

एका करके ईंटों ने भी बांध दिया पुल नदियों में,
बिना एकता के तुम हम, उठ न सकेंगे सदियों में।

आचार्य श्री तुलसी सदा से शांति और समन्वय के समर्थक थे। जैन शासन की अप्रभावना न हो, इसके लिए वे सतत् जागरूक थे।

आचार्य बनने के बाद आचार्य श्री तुलसी ने पहला चतुर्मास बीकानेर किया। चतुर्मास की समाप्ति पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा के दिन विहार के समय हजारों उपासक साथ थे। जिस मार्ग से विहार किया, उसी मार्ग में सामने से स्थानकवासी समाज के युवाचार्य श्री विहार करके आ रहे थे। उनके साथ में भी हजारों श्रावक थे। उस समय श्रावक समाज में साम्प्रदायिक कट्टरता अधिक थी। आचार्य श्री तुलसी ने उनके रास्ते की जानकारी करके रांगड़ी चौक मार्ग से विहार किया। जब सामने से स्थानकवासी समाज का जुलूस आता दिखाई दिया, तब आचार्य श्री ने सोचा—अगर दोनों जुलूस मार्ग में मिलेंगे तो श्रावक समाज में गुत्थम-गुत्थी हो जाएगी। आचार्य श्री ने तत्काल निर्णय लेकर अपने चरण दूसरे मार्ग की ओर मोड़ लिए। उनके पीछे सारे संघ के चरण मुड़ गए। इससे एक अप्रिय घटना टल गई। यद्यपि उस समय आचार्य श्री ने यौवन की दहलीज पर पाँव रखे ही थे, आचार्य पद पर आरूढ़ हुये ही थे पर, यह निर्णय उनके चिन्तन की प्रौढ़ता का परिचायक है। इस निर्णय की मधुर खुशबू सारे नगर में फैल गई। वहां के तत्कालीन महाराजा श्री गंगासिंहजी ने जब यह घटना सुनी तो बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—तेरापंथियों के आचार्य श्री की उम्र छोटी है पर समझदारी बहुत बड़ी है। अगर जैनी लोग मार्ग में भिड़ जाते तो नगर के लिए बड़ा अशुभ होता।

तेरापंथ धर्म संघ का प्रारंभ से किसी न किसी प्रकार का विरोध होता आया है। आचार्य श्री तुलसी को भी आचार्य बनने के बाद कई वर्षों तक जैन सम्प्रदायों की ओर से विरोध का सामना करना पड़ा था। उन्होंने कई वर्षों तक अपने संघ के आन्तरिक निर्माण की दृष्टि से थली प्रदेश (बीकानेर डिविजन) में चतुर्मास किए। थली प्रदेश के बाहर सबसे पहले राजस्थान की राजधानी जयपुर में चतुर्मास किया। वहां जैन समाज की ओर से दया दान के नाम पर उग्र विरोध का सामना करना पड़ा। नगर की दीवारों पर, सड़कों पर विरोध के पोस्टर्स, पेम्फलेटस आदि चिपाकए गए। यह क्रम कई वर्षों तक चला पर, उन्होंने विरोध का उत्तर कभी विरोध से नहीं दिया। उन्होंने जयपुर में निर्मित एक गीत में लिखा—''जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद'' आचार्य श्री

की शान्ति और समन्वय नीति का परिणाम है, जो विरोधी थे वे भी उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। आज तेरापंथ धर्म संघ के प्रति सारे जैन समाज में जिज्ञासा और आकर्षण का भाव दृष्टि गोचर हो रहा है, यह आचार्य श्री तुलसी की सहिष्णुता और सद्भावना की वृत्ति का परिणाम है।

सन् १९६४ के चतुर्मास में संवत्सरी के बाद खमतखामणा का विराट समारोह गंगाशहर में आयोजित हुआ। आचार्यवर बीकानेर से गंगाशहर पधारे। जिनके प्रति उच्चावच भाव आया था, जिनसे विशेष संबंध रहा था, आचार्यवर ने उन सबका नामोल्लेख करके खमतखामणा किया। उसी दिन आचार्यश्री कालूगणी का स्वर्गारोहण दिवस था। खमतखामणा के प्रसंग में आचार्यवर ने फरमाया—बीकानेर में जो भी साधु-साध्वीवृन्द चतुर्मास कर रहे हैं, सभी संप्रदायों के श्रावकों को उनसे इस अवसर पर खमतखामणा करना चाहिए। इसकी पहल कौन करेगा ? आचार्यवर का संकेत पाते ही उपस्थित श्रावक खड़े हो गए। बाद में श्री ताराचन्दजी बोथरा के नेतृत्व में श्रावकों का एक समूह अन्य सम्प्रदायों के स्थानों पर खमतखामणा करने गए। इस उपक्रम की शहर में बहुत सुन्दर प्रतिक्रिया रही, इसे समन्वय की दिशा में विशेष कदम माना गया।

बीकानेर चतुर्मास में आचार्यश्री ने जैन एकता के तीन-चार सूत्र घोषित किए । चतुर्मास के बाद जोधपुर पदार्पण हुआ। उन सूत्रों की क्रियान्विति के लिए ६ जनवरी को श्रमण संघ के उपाध्यायश्री हस्तीमलजी महाराज से विचार-विमर्श के लिए पांच संतो को भेजा। संतो ने आचार्यश्री के विचार उनको बताए। उन्होंने बहुत प्रसन्नता प्रकट की तथा जैन एकता के सूत्रों का यथा संभव अनुसरण करने का आश्वासन दिया।

आचार्यश्री तुलसी ने जैन एकता के लिए भागीरथ प्रयास किया। वे हर समय जैन एकता और सद्भावना के विकास के लिए जागरूक और प्रयत्नशील रहते थे। किसी भी प्रसंग से जैन एकता की भावना को आघात नहीं लगे यह उनके चिंतन का मुख्य विषय था। ई.स. १९६५ में दिल्ली चतुर्मास के पूर्व पद यात्रा करते हुए आचार्यवर जयपुर पधारे। उस समय तीर्थराज सम्मेदशिखरजी को लेकर श्वेतांबर और दिगम्बर परम्परा में उग्र विवाद के समाचार सुने। इससे आचार्यश्री को बहुत चिंता हुई। श्वेताम्बर समाज ने विहार सरकार के साथ मिलकर एक समझौता कर लिया। जिसमें दिगंबरों का कोई उल्लेख तक नहीं

किया। इसकी दिगम्बर समाज की ओर से आपत्ति की गई। उन्होंने कहा —सम्मेदशिखर पर दिगम्बर समाज को पूजा का अधिकार मिलना चाहिए। इस संदर्भ में उनकी ओर से आन्दोलन शुरू हो गया। साहु शान्ति प्रसाद जैन के नेतृत्व में लगभग एक लाख दिगम्बर लोगों ने नई दिल्ली में जुलूस निकाला, प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को एक ज्ञापन दिया और न्याय का आश्वासन प्राप्त किया। इस प्रसंग पर आचार्यश्री ने चिंतन किया —एक ओर शांतिप्रसाद जैन तथा दूसरी ओर कस्तूरभाई लालभाई वार्तालाप कर इस समस्या का हल खोज लेते तो यह झन्झट समाप्त हो जाता। इस प्रकार के झन्झटों से जैन एकता का कार्य खटाई में पड़ जाता है। इस समस्या का समाधान शीघ्र हो, यह आचार्यश्री को अनुभव हुआ। इस प्रसंग पर उन्होंने एक वक्तव्य दिया वह इस प्रकार हैं—

तीर्थराज सम्मेदशिखर जैन-जगत का पवित्र ऐतिहासिक स्थान है। वह अनेक तीर्थंकरों व मुनियों की साधना व निर्वाण-भूमि है। माना जाता है कि बीस तीर्थंकरों ने इसी पुण्य-भूमि से निर्वाण प्राप्त किया था।

जिस तपोभूमि से वीतरागता प्रवाहित हुई थी, उसी भूमि को लेकर राग-द्वेष बढ़े, यह चिंतनीय है। सम्मेदशिखर के विषय में कुछ महीनों से श्वेतांबर-दिगम्बर समाज में संघर्ष चल रहा है, उससे मन में क्षोभ होता है। एक ओर हम यह प्रयत्न करते है कि सभी जैन सम्प्रदायों में सद्भावना एवं मैत्री बढ़े और दूसरी ओर पाते है कि जैन जगत के दो प्रमुख सम्प्रदायों में तनाव बढ़ रहा है।

जैन लोग इस बात में विश्वास करते है कि जहां तनाव बढ़ता है, वहां हम सत्य से दूर चले जाते हैं। मैं देखता हूं कि इस तनाव में भी लोग वास्तविकता से दूर जा रहे हैं। आज के वैज्ञानिक जगत में समस्या सुलझाने की अनेक पद्धतियां विकसित हुई हैं। विरोधी विचारधारा वाले राष्ट्र भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के मंच से अपने विवाद सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। राजनैतिक लोग जब एक सामान्य मंच पर बैठ अपने मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं तो क्या कारण है कि धार्मिक लोग ऐसा नहीं कर सकते ? मैं वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में फिर अपने विचार दोहराना चाहता हूं कि जैन-जगत के प्रमुख व्यक्ति एक ऐसे मंच की बात सोचें जो आन्तरिक विवादों को सुलझाने तथा बाहरी समस्याओं का सामना करने में समर्थ हो।

सब जैन सम्प्रदायों के प्रतिनिधि-संगठन का सुझाव मैंने इसलिए दिया था कि छोटे-छोटे प्रश्न महान् संगठन में दरार न डाल सकें।

मैं जैन समाज को यह परामर्श देना अपना विशेष अधिकार मानता हूं कि वह समस्या को इस प्रकार सुलझाएं जिससे किसी पक्ष की ऊंच-नीच का प्रश्न न उठे, दोनों की समानता और स्वतन्त्रता की सुरक्षा हो।

सन् १९६७ में कच्छ प्रदेश की यात्रा सम्पन्न कर आचार्य श्री तुलसी सौराष्ट्र पधारे। वहां विभिन्न गांवों-नगरों में भ्रमण करते हुए पालीताना पधारे। वहां आनन्दजी कल्याणजी की पेड़ी की ओर से सारी व्यवस्थाएं की गई। दिगम्बर जैन धर्मशाला के पास नगर के प्रमुख लोगों ने आचार्यवर का स्वागत किया। पहला कार्यक्रम शान्तिभवन के प्रांगण में हुआ। नगर के विशिष्ट लोगों ने स्वागत भाषण किया। आचार्यवर ने अपने प्रवचन में जैन धर्म के महत्त्व पर प्रकाश डाला तथा एकता और समन्वय का विकास करने की प्रेरणा दी। २३ जून को आचार्यवर चतुर्विध धर्मसंघ के साथ सिद्धक्षेत्र शत्रुन्जय के शिखर पर पधारे। आगम मंदिर के निकट से चढ़ाई प्रारंभ की। धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़े। बीच में कई विश्राम लिए। साढ़े तीन हजार सीढ़ियां चढ़ने के बाद भ. ऋषभदेव के मन्दिर में पहुंचे। वहां बैठ कर आचार्यवर ने भगवान ऋषभदेव की स्तुति की, ध्यान किया तथा संक्षिप्त प्रवचन किया। आचार्यश्री को लगभग एक घण्टा चढ़ने में, एक घण्टा उतरने में और दो घण्टा मन्दिरों के निरीक्षण में लगे। वापस आगमन के समय आगम मंदिर में पधारे। उसमें लिखे हुए ४५ आगमों को देखा। मार्ग में आचार्य विजयवल्लभसूरि की स्मृति में निर्मित वल्लभ विहार में पधारे। वहां सौ से अधिक साध्वियां थी।

३१ जुलाई १९६७ को श्री रिषभदासजी रांका के साथ श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के वरिष्ठ श्रावक श्री कस्तूरभाई लालभाई ने आचार्यवर के दर्शन किए। उनका जैन समाज में व्यापक प्रभाव था। जैन संप्रदायों की स्थिति को लेकर उनके मन में निराशा की भावना प्रतीत हुई। वे बहुत स्पष्टवादी थे। पर उनके चिंतन में मौलिकता थी। उन्होंने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए—

(१) जैनों का ऐसा साहित्य तैयार हो जो वर्तमान से जुड़ा हो।

(२) जैनों को व्यवस्था के क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन से सीख लेनी चाहिए।

(३) जैन सम्प्रदायों में हार्दिक एकता होनी चाहिए।

(४) जो साधु अपने आचार को भूलकर दिग्भ्रांत हो रहे है, उनके प्रति कड़ाई से सोचना चाहिए।

(५) भविष्य में विचार-विनिमय का क्रम चालू रहना चाहिए।

१५ अगस्त के दिन श्री कस्तूरभाई लालभाई ने दूसरी बार आचार्यवर के दर्शन किए। जैन एकता के बारे में बातचीत हुई। कस्तूरभाई ने कहा –तेरापंथ धर्म संघ में जैसा नेतृत्व हैं, वैसा अन्य धर्म संघों में नहीं है। इसलिए एकता की बात कठिन लगती है। आचार्यश्री ने कहा–आशावादी व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता है, जैन एकता के विषय में निराश होने की जरूरत नहीं हैं। एक साथ में सब जैन संप्रदायों की एकता की कल्पना कठिन हैं, पर समग्र जैन समाज का एक प्रतिनिधि संगठन बनाने तथा जैनों के सार्वभौम हितों की सुरक्षा का प्रयास होना चाहिए। यह सुझाव कस्तूरभाई को पसन्द आया। उन्होंने इस कल्पना को आगे बढ़ाने में रूचि ली।

१० सितम्बर, १९६७ को श्वेताम्बर मूर्तिपूजक कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष श्री डी.सी. गार्डी बम्बई से अहमदाबाद आए। आचार्यश्री के दर्शन किए। बहुत श्रद्धा व्यक्त की। जैन एकता के विषय में चर्चा हुई। श्री गार्डी ने कहा–आचार्यजी ! आप अपनी यात्रा के दौरान शत्रुंजय पर गए इसकी जैन समाज में अच्छी प्रतिक्रिया हुई है।

आचार्य श्री तुलसी का कठोर अनुशासन प्रसिद्ध था। पर वे अपने सिद्धान्तों के प्रति जितने कठोर थे, उतने ही नम्र, उदार और गुणग्राहक थे। आचार्य की कृति अग्नि परीक्षा को लेकर पुरी के शंकराचार्य निरंजनदेवजी आदि धर्मगुरूओं ने उग्र विरोध किया।

अग्नि परीक्षा की रचना का आधार जैन रामायण था, जो सभी जैन सम्प्रदायों में मान्य है। सभी जैन आचार्य उसका पाठ करते है। यह विषय केवल आचार्य श्री तुलसी से संबंधित नहीं था। पर इतने बड़े विरोध के प्रसंग में भी उपाध्याय अमरमुनिजी के अलावा किसी भी जैन मुनि या आचार्य ने अग्नि परीक्षा के समर्थन में अपने विचार प्रकट नहीं किए।

अमरमुनिजी ने शंकराचार्यजी को खुलापत्र लिखा। उस में अग्नि परीक्षा का खुलकर समर्थन किया। आचार्य श्री तुलसी ने पत्र पढ़कर अमरमुनिजी के

प्रति लिखित रूप से कृतज्ञता प्रकट की। पारसभाई जैन के द्वारा आचार्यवर के उद्गार उपाध्यायश्री के पास पहुंच गए। वे बहुत प्रसन्न हुए। आचार्यश्री ने अपने उद्गारों में लिखा था –वर्तमान परिस्थितियों में आपने जो अन्तरंगता दिखाई है, वह चिरस्मरणीय रहेगी। मैं इससे बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुआ हूं। अग्नि परीक्षा का प्रकरण सारे जैन समाज से संबंधित है, पर आपके अलावा अधिकतर जैन समाज मौन है। मैं आपके इस सहयोग के लिए कृतज्ञ हूं।

आचार्यश्री तुलसी सेवाभावी, तत्वज्ञानी, साधना परायण श्रावकों और कार्यकर्त्ताओं को सदा प्रोत्साहन देते थे। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। वे हर संप्रदाय के सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं को बहुत महत्व देते थे। दिनांक ४ फरवरी, १९९० को जैन शासन के चारों प्रमुख संप्रदायों के चार महानुभावों को जैन रत्न अलंकरण उनके सानिध्य में प्रदान किया गया। अलंकरण प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे–अखिल भारतीय श्वेतांबर जैन कॉन्फेन्स के अध्यक्ष श्री दीपचंदभाई गार्डी, स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेन्स के कार्याध्यक्ष श्री हस्तीमलजी महणोत, विभिन्न क्षेत्रों में वर्चस्व रखने वाली महिला श्रीमती सरयू दफ्तरी, बारहव्रतधारी, तत्वज्ञानी व अणुव्रती श्रावकश्री रामकुमारजी सरावगी। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में कहा–सेवाभावी और योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों का समाज के द्वारा मूल्यांकन होना ही चाहिए। जिन चार व्यक्तियों का आज अंकन किया गया, उनके प्रति किसी प्रकार का कोई प्रश्न नहीं है।

आचार्यश्री तुलसी बहुत उदार और गुणग्राहक थे। वे हर संप्रदाय के संतों की विशेषताओं का सम्मान करते थे। जब उपाध्याय अमरमुनिजी का स्वर्गवास हो गया तब आचार्यवर ने एक संदेश प्रदान किया, वह इस प्रकार है –संवाद मिला कि उपाध्याय अमरमुनिजी दिवंगत हो गए। अनुभव हुआ, जैन शासन का एक विशिष्ट व्यक्तित्व अदृश्य हो गया। वे चिंतनशील, प्रबुद्ध और उदार व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी उदारता का परिचय विशेष प्रसंगों में मिला -

(१) अग्नि परीक्षा प्रकरण के समय उन्होंने जिस उदारता के साथ हमारा साथ दिया, वह उल्लेखनीय है।

(२) दूसरा प्रसंग आगरा का है, लौहा मंडी के स्थानक में उन्होंने हमें आग्रहपूर्वक ठहराया।

उनकी सद्भावना का मेरे मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। साहित्य और चिंतन

का उनके साथ बराबर संपर्क बना रहा। यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आज जैन शासन का विशिष्ट व्यक्तित्व इस दुनिया से विदा हो गया।

२८ मार्च, १९९२ को श्रमण संघ के आचार्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज का जब स्वर्गवास हुआ तब आचार्यश्री तुलसी ने अपने संदेश में कहा—वर्धमान श्रमण संघ के आचार्यश्री आनन्दऋषिजी बहुत ही भद्र पुरूष थे, उनकी साधुत्व के प्रति आस्था और सहज सरलता सचमुच हमारे मन में आकर्षण पैदा करती थी। दिल्ली में संवत्सरी की एकता के बारे में उनके साथ शिखरवार्ता हुई उसमें उन्होंने बहुत ही सहृदयता का परिचय दिया।

एक दीक्षा समारोह में उदारता पूर्वक वे हमारे सहभागी बने। उनके चले जाने से श्रमण संघ में तो क्षति हुई ही है, उसके साथ जैन शासन में एक अच्छे आचार्य का स्थान रिक्त हुआ है।

किसी भी कार्य के स्थायित्व के लिए उसके हर पक्ष की ओर ध्यान देना जरूरी होता है। आचार्यवर ने जैन मंच की परिकल्पना समाज के समक्ष प्रस्तुत की, उसके संबंध में अनेक आचार्यों, मुनियों तथा चिंतनशील श्रावकों से विचार-विमर्श हुआ। सबने एकता मंच की विचारधारा का समर्थन किया। न्यायमूर्ति श्री पानाचंदजी जैन ने एकता मंच के संविधान का निर्माण किया। आचार्यश्री के जयपुर प्रवास में एक दिन व्याख्यान में लोगों को संविधान सुनाया। उन्होंने कहा —जैन मंच का मुख्य काम जैन धर्म के हितों की रक्षा करना है तथा सभी संप्रदायों के पारस्परिक विवादों को सुलझाना है।

आचार्यश्री तुलसी ने एक उद्घोष प्रदान किया था—पहले इन्सान-इन्सान, फिर हिन्दु या मुसलमान। इसी तरह एक उद्घोष दिया—पहले जैन-जैन, फिर श्वेताम्बर या दिगम्बर। इससे हम समझ सकते है उनकी दृष्टि में जैनत्व का कितना महत्व था। उनकी चिंतन में जैनत्व मुख्य था, संप्रदाय और परम्परा गौण थी। वे चाहते थे अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक जैसे प्रश्नों पर सब जैन मिलकर निर्णय करें। इसी तरह समय-समय पर दीक्षा और संथारे के संबंध में कुछ लोग विरोध करते हैं, वे संथारे की तुलना सती प्रथा से करते है तथा आत्महत्या भी बता देते है। ऐसे विरोधों का प्रतीकार जैन समाज के द्वारा सामूहिक रूप से होना चाहिए। यह प्रश्न किसी संप्रदाय विशेष से संबंधित नहीं हैं, सारी जैन परम्परा से हैं। उन्होंने मानसिक पीड़ा के साथ कहा—खेद है, जैन

समाज में एकता और संगठन की भावना जैसी जागृत होनी चाहिए, वैसी नहीं हो रही है।

आचार्यश्री तुलसी प्रयोग धर्मा आचार्य थे। वे प्रयोग में विश्वास करते थे। जैन एकता का वातावरण बनाने के लिए ८ जून रविवार , ई.स. १९९७ को स्वर्गारोहण के लगभग एक पखवाड़ा पूर्व बीकानेर संभाग के प्रमुख क्षेत्र गंगाशहर में सभी जैन संप्रदायों के लिए अभिनव सामायिक का प्रयोग किया। आचार्यवर का इंगित पाकर प्रवास व्यवस्था समिति के कार्यकत्ताओं ने आसपास के सभी गांवों, नगरों में सभी संप्रदायों के जैन लोगों से संपर्क स्थापित कर व्यवस्थित सूचना दी। उसका परिणाम यह हुआ कि सूर्योदय के कुछ समय बाद ही लोगों का आना शुरू हो गया। गंगाशहर, भीनासर और बीकानेर के अतिरिक्त अनके निकटवर्त्ती क्षेत्रों के लोग आते गए और पण्डाल में व्यवस्थित रूप से बैठते गए। थोड़ी देर में विशाल समवसरण का स्थान जनाकीर्ण हो गया। लोगों का प्रवाह रूका नहीं था। भवन के सामने सड़क का मुख्य भाग भी काम में लिया गया। लगभग ८-१० हजार व्यक्तियों ने एक साथ एक रूप में सामायिक का प्रयोग किया। जिसमें तेरापंथ समाज के अलावा भी सभी संप्रदायों के जैन तथा कुछ अजैन भी मुखवस्त्रिका लगाकर पंक्ति वद्ध हो एक आसन में आसीन हुए। वह दृश्य बहुत मनोहारी और आकर्षक था। लगभग ९ बजे आचार्यवर ने सामायिक प्रतिज्ञा पाठ का समुच्चारण कराया। सबसे पहले त्रिपदी वंदना कराई गई। उसके बाद जप योग एवं ध्यान योग का प्रयोग हुआ। जप का प्रयोग आचार्यश्री ने कराया, ध्यान का प्रयोग महाश्रमणजी (आचार्यश्री महाश्रमणजी) ने कराया। उसके बाद स्वाध्याय का क्रम चला। जिसमें सामायिक के स्वरूप और महत्त्व पर प्रकाश डाला गया। अभिनव सामायिक के प्रयोग से सभी उपस्थित लोग बहुत प्रभावित हुए, उससे जैन एकता का एक प्रायोगिक रूप प्रस्तुत हुआ।

आचार्यश्री तुलसी ने जैन एकता और प्रभावना के लिए जो जीवन भर प्रयास किया वह इतिहास के पृष्ठों का दुर्लभ दस्तावेज हैं। उनकी जन्मशताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर उनके अधूरे सपनों को पूरा किया जा सके तो सम्पूर्ण जैन समाज की ओर से उस महापुरुष के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी

ई.स. १९७४ में भ. महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी का समय था। ई.स. १९७१ तक उसकी आयोजना के लिए कोई सामूहिक संगठन नहीं बन पाया था। इसलिए आचार्य श्री तुलसी के मानस में बहुत उद्वेलन था। उस समय समग्र जैन समाज के समक्ष आचार्यवर ने निम्नलिखित रूप से अपने विचार प्रस्तुत किए –भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी मनाने की चर्चा वर्षों से चल रही है। जब से यह चर्चा चली, तब से सारे जैन संप्रदाय उसे मनाने के लिए उत्सुक है और अपने-अपने ढंग से योजना बना रहे है। कुछ लोगों ने योजना बना ली भी है। किंतु निर्वाण शताब्दी के सामूहिक आयोजन या प्रवृत्ति के बारे में कम सोचा गया है। साधु-समाज के द्वारा इस विषय में कुछ सोचा गया हो, ऐसा मेरे जानने में नहीं आया।

(१) क्या साधु-समाज के सामूहिक प्रयत्न के बिना इस आयोजन की वांछित सफलता संभव है ?

(२) क्या इस स्थिति में हम भ.महावीर को विश्व के सम्मुख महत्त्वपूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकेंगें ?

(३) क्या जैन धर्म के विराट रूप को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में इस अवसर का लाभ उठा सकेंगे ?

ये सभी प्रश्न बहुत गंभीरता से विमर्शनीय है। सामूहिक आयोजन व प्रवृत्ति की सफलता के लिए जैन आचार्यों या उनके प्रतिनिधि मण्डल के सम्मेलन की आवश्यकता का मुझे अनुभव हो रहा है। मैं सोचता हूं कि आप भी यही अनुभव करते होंगे। इस कार्य के लिए अब बहुत लंबा समय शेष नहीं रहा है। इसलिए कुछ निर्णायक कदम उठाने आवश्यक है। इसका पहला कदम

यही होगा कि यह सम्मेलन कब और कहां हो ? सम्मेलन के सामने चिन्तन के कुछ विषय इस प्रकार हो सकते हैं–

(१) प्रस्तुत निर्वाण शताब्दी को सामुदायिक ढंग से कैसे मनाया जाए तथा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त सहानुभूति या सहयोग का उपयोग कैसे किया जाए ?

(२) जैन शासन की अखण्डता और मौलिक एकता का विकास कैसे किया जाए?

(३) अन्तः साम्प्रदायिक आचार संहिता का निर्माण कैसे किया जाए ?

(४) पर्वो के सामूहिक आयोजन में एकता कैसे लाई जाए ?

इस प्रकार के अन्य जो भी विषय आवश्यक प्रतीत होगें, चिन्तन की सूची में लिए जा सकेंगे। मैं अनुभव करता हूं और सोचता हूं कि मेरी तरह सभी चिन्तनशील आचार्य और मुनि अनुभव करते है कि वर्तमान युग के संदर्भ में पारस्परिक सद्भाव और समन्वय नितांत स्पृहणीय है। साधु-समाज के उज्जवल भविष्य के लिए यह बहुत ही जरूरी है। मुझे विश्वास है कि इस पवित्र कार्य के सम्पादन में हम सबका उचित योग होगा।

समाज के कार्यकर्त्ताओं ने आचार्यवर के उक्त विचार जैन सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों, साधु-साध्वियों, विशिष्ट व्यक्तियों तथा पत्र-पत्रिकाओं तक पहुंचा दिया।

आचार्य प्रवर के मानस में जैनत्व के विकास की दृष्टि से हर प्रसंग को महत्व देने का लक्ष्य रहता था, जिससे जैन धर्म की प्रभावना हो। १९७१ में २५-२६ सितम्बर को ब्यावर में भारत जैन महामण्डल का वार्षिक अधिवेशन निश्चित हुआ। मण्डल के पदाधिकारियों के निवेदन पर आचार्यवर ने संदेश प्रदान किया। संदेश निम्न प्रकार से था–विचार-विकास को मैं विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता हूं। किंतु भगवान महावीर के दर्शन का अध्येता और अनुगामी होने के नाते समन्वय-विहीन विचार-विकास को मैं मूल्यवान नहीं मानता। जैनों की विभिन्न विचारधाराओं में जो समन्वय सूत्र होना चाहिए, वह दिखाई नहीं देता। यह चिन्तनीय बात है। भारत जैन महामण्डल इस दिशा मे प्रयत्नशील है, यह श्रेष्ठ है। इसकी अर्हता बढ़नी ही

चाहिए। हमारे सामने भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी का महान् कार्य है। सब जैन लोग अपने-अपने ढंग से इसमें सचेष्ट भी हैं। किंतु इस कार्य में सामुदायिकता का जो स्वर प्रस्फुटित होना चाहिए था, वह नहीं हुआ है। मैं सोचता हूं कि इस दिशा में हमारे मुनिजन और श्रावकगण कोई समुचित मार्ग निकालेंगें। भारत जैन महामण्डल के प्रयत्न भी बहुत फलवान होंगे।

ई.स. १९७३ में आचार्य श्री तुलसी का चतुर्मास हरियाणा के प्रमुख नगर हिसार में था। वहां ९ अगस्त को प्रसिद्ध उद्योगपति एवं भगवान महावीर २५वीं निर्वाण शताब्दी के संदर्भ में गठित राष्ट्रीय कमेटी के कार्यकारी अध्यक्ष साहु शांतिप्रसादजी जैन, दैनिक नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षय कुमार जैन, श्री प्रभुदयाल डावड़ीवाल आदि ने आचार्यवर के दर्शन किए। निर्वाण शताब्दी के संबंध में उनके साथ महत्वपूर्ण परिचर्चा हुई। उन्होंने आचार्य श्री को राष्ट्रीय कमेटी द्वारा निर्णीत कार्यक्रमों की अवगति दी। आचार्यवर का मार्गदर्शन पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के समारोह का आचार्य श्री तुलसी के मानस मे बहुत उत्साह था। वे इसे जैन धर्म की एकता और प्रभावना की दृष्टि से अनुपम अवसर समझते थे। दिल्ली देश की राजधानी है, निर्वाण शताब्दी का केन्द्रीय कार्यालय वहीं था। शताब्दी के अवसर पर जैन शासन की विशिष्ट प्रभावना हो, भगवान महावीर का नाम सारे विश्व में फैलें, उनके सिद्धान्तों और आदर्शों का व्यापक प्रसार हो, यह आचार्यवर की तीव्र भावना थी। उन्होंने दिल्ली पधारते ही निर्वाण शताब्दी का प्रसंग सफल हो उसके लिए बहुत परिश्रम किया। दिल्ली की जनता को जागृत करने के लिए उपनगरों में भ्रमण किया। जैन समाज के प्रमुख लेागों से वार्तालाप कर इस अवसर के लिए उन्हें सक्रिय और जागरूक बनाया। निर्वाण शताब्दी समिति के पदाधिकारियों का मार्गदर्शन किया, उनकी समस्याओं का समाधान किया। प्रमुख संतो और आचार्यो से विचार-विमर्श कर कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित की। सुशील मुनि के अनुरोध पर शंकर रोड़ स्थित उनके द्वारा संस्थापित अहिंसा भवन में पधारे। सुशीलमुनि ने हार्दिक स्वागत किया। वहां विविधमुखी कार्यक्रम आयोजित हुए। निर्वाण शताब्दी के संबंध में व्यापक विचार-विमर्श हुआ।

राष्ट्रीय शताब्दी समिति के पदाधिकारियों के सुझाव पर चारो संप्रदायों के चार प्रमुख संतो की कार्यक्रम निर्णायक समिति का गठन हुआ। उसमें चार संत थे—मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी), मुनिश्री सुशीलकुमारजी, मुनिश्री जनकविजयजी। इस समिति ने एक ध्वज, एक प्रतीक, सभी जैनों को मान्य ग्रंथ समण सुत्तं का निर्णय किया, निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में होने वाले कार्यक्रमों का निर्णय किया। इस समारोह से सभी जैन संप्रदायों में भावनात्मक निकटता बढ़ी। आचार्यश्री तुलसी का प्रवासस्थल अणुव्रत भवन लगभग ४-५ महीनों तक सारे जैन समाज का प्रमुख केन्द्र बना रहा। सभी जैन संप्रदायों के साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविकाओं का आना जाना आचार्यवर के सानिध्य में निरंतर बना रहा। राष्ट्रीय शताब्दी समिति का कार्यालय भी उसी भवन में तीसरी मंजिल पर था।

८ सितंबर, १९७४ का प्रातः डिफेन्स कॉलोनी के अहिंसा विहार के प्रांगण में जैन एकता सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन में सभी जैन संप्रदायों के साधु-साध्वियों की उपस्थिति थी। भारत के राष्ट्रपति श्री फखरूद्दीन अहमद ने उसमें विशेष रूप से भाग लिया। राष्ट्रपति महोदय ने भगवान महावीर निर्वाण शताब्दी समारोह की राष्ट्रीय समिति के संरक्षक की हैसियत से अपने अभिभाषण में यह भावना व्यक्त की —इस समारोह को केवल जैन समाज ही नहीं, दुनियां के सब लोग मिलकर मनाएं, क्योंकि महावीर के सिद्धान्त किसी कौम विशेष के लिए नहीं, पूरे विश्व के लिए उपयोगी है।

जैन एकता सम्मेलन को सम्बोधित करने वालों में मुनि श्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) मुनिश्री सुशील कुमारजी, साध्वी प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी, साध्वी श्री विचक्षणश्रीजी, साध्वीश्री मृगावतीजी व साध्वीश्री प्रीतिसुधाजी आदि के नाम उल्लेखनीय है। मुनिश्री विद्यानन्दजी विशेष कारण वश सम्मेलन में उपस्थित नहीं हो सके। उन्होंने अपने विचार लिखित रूप से प्रेषित किए। आचार्यश्री तुलसी ने अपने प्रवचन मे भगवान महावीर के सिद्धान्तों-संयम, समता, सहअस्तित्व की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। निर्वाण शताब्दी समारोह को संयम वर्ष के रूप में मनाने के निर्णय की अवगति देते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा-आज राष्ट्र जिस संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रहा

है, उससे निजात पाने के लिए सभी देशवासियों को संयम की साधना करनी होगी। जितना संयम उतना समाधान –यह आस्था ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को संकट से उबार सकेगी।

६ अक्टूबर को भारत जैन महामण्डल की ओर से विश्व मैत्री दिवस का आयोजन किया गया। चारों ही संप्रदायों के प्रतिनिधियों की सहभागिता थी। उसमें आचार्यश्री तुलसी ने जैन एकता और निर्वाण शताब्दी समारोह पर बहुत प्रेरक वक्तव्य प्रदान किया, जिससे आगामी कार्यक्रमों की एक सुन्दर भूमिका का निर्माण हुआ। उन्होंने आगे कहा–विश्व मैत्री के पहले अपने घर में मैत्री के विकास पर ध्यान देना चाहिए। निर्वाण शताब्दी समारोह का स्वर्णिम अवसर हमें प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर संप्रदायवाद के व्यामोह से दूर होकर सभी जैन धर्म और भगवान महावीर के नाम को सामने रखकर कार्य करें। आचार्यवर के उद्‌बोधन से चारों ही संप्रदायों के कार्यकर्त्ताओं में नई ऊर्जा का संचार हुआ।

निर्वाण शताब्दी समारोह का वर्षों से चिंतन हो रहा था। उसकी क्रियान्विति का दुर्लभ क्षण उपस्थित हो गया। १३ नवम्बर १९७४ को दीपावली के दिन भगवान महावीर का पच्चीसौवां निर्वाण दिवस था। उसके उपलक्ष में प्रातः राष्ट्रपति भवन में महामहिम श्री फखरूद्‌दीन अली अहमद ने डाक टिकट का विमोचन किया। जैन समाज के साथ अन्य लोग भी प्रसन्न हुए। क्योंकि भगवान महावीर का व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व सार्वभौम था। उनका दर्शन मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। यही कारण है, उन दिनों भारत की राजधानी दिल्ली का कण-कण महावीरमय लग रहा था। १३ से २० नवम्बर तक ८ दिनों का लालकिले के बाहर मैदान में चारों संप्रदायों का सामूहिक कार्यक्रम रखने का निर्णय लिया गया। वहां उन कार्यक्रमों के लिए दिल्ली प्रदेश निर्वाण शताब्दी समिति की ओर से विशाल पंडाल बनाया गया। चारों ही संप्रदायों के साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविकाओं ने उन कार्यक्रमों में भाग लिया। पहले दिन का कार्यक्रम बहुत सफल रहा। इससे समाज में आगे के कार्यक्रमों के लिए विशेष उत्साह जागृत हो गया। सामूहिक जुलूस व वृहद जन सभा आदि की व्यवस्था के प्रति सजगता बढ़ गई। १४ नवम्बर को गणधर गौतम स्मृत्ति दिवस का आयोजन हुआ। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसलिए दूसरे दिन प्रथमगणधर

गौतम स्वामी के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया। उनका नाम इन्द्रभूति था। गौतम गोत्र था, पर वर्तमान में अधिकतर लोग उनको गौतम स्वामी के नाम से पहचानते है। दिनांक १५ नवम्बर को श्रमण संस्कृति परिषद् के रूप में मनाया गया। श्रमण संस्कृति रूढ़िवाद और क्रियाकाण्डों को महत्व नहीं देती। अनेक आचार्यों और मुनियों ने विभिन्न कोणों से विषय की प्रस्तुति दी। केन्द्रीय संचार उपमंत्री श्री जगन्नाथ पहाड़िया ने भी इस अवसर पर विचार प्रकट किए।

१६ नवम्बर को निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में एक विशाल जुलूस की समायोजना की गई। दिल्ली के चारों जैन समाजों ने मिलकर जुलूस को जो रूप दिया उससे उसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित हो गई। प्रथम दर्शन में उसकी भव्य सजावट अनिर्वचनीय थी। विविध झांकियां, विविध संगीत, विविधवाद्य और विविध दृष्य। दर्शक लोग मुग्ध होकर जुलूस को देखते रहे। तेरापंथ महिला मण्डल की बहिनें जैन ध्वज के बार्डर वाली एक जैसी साड़ियों में अपनी अलग पहचान लिए हुए थी। आठ-नौ किलोमीटर लम्बा जुलूस शहर भर में चर्चा का विषय बना रहा। लोगों का अनुमान था कि लगभग डेढ़ लाख से अधिक लोग जुलूस में सहभागी थे। ऐसा लगता था, मानो सारा शहर दर्शक बन गया हो। कुछ व्यक्तियों ने बताया कि दिल्ली में ऐसा मनोहारी दृश्य पहली बार देखा है। जुलूस देखने वाले लोग अवाक् थे, कई दिनों तक उसकी चर्चा होती रही। संभवतः प्रत्येक समाचार पत्र और टेलिविजन पर जुलूस की अच्छी चर्चा थी। मुसलमान भाईयों ने मिश्री और इलायची बांटकर जुलूस का स्वागत किया।

जुलूस का प्रारंभ १० बजे के आसपास हुआ। कार्यकर्त्ताओं का चिंतन यह था कि ३ बजे के आसपास जुलूस लालकिले पर पहुंच जाएगा। इस आधार पर निर्णय लिया कि सभी आम्नायों के आचार्यों, मुनि और साध्वियां भी जुलूस में संभागी बने। उक्त निर्णय के अनुसार आचार्यश्री तुलसी अपने शिष्य समुदाय के साथ, मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री सुशीलकुमारजी तथा मुनिश्री जनकविजयजी जुलूस में थोड़ी देर सम्मिलित हुए। बाद में सभा स्थल पर जो हजारों लोग उपस्थित थे उनको संबोधित कर सभी अपने प्रवास स्थल पर पधार गए। क्योंकि सूर्यास्त होने में समय बहुत कम था। जुलूस निर्धारित समय से बहुत विलंब से पहुंचा। समय लगभग ३ बजे का था, पर जुलूस इतना

लम्बा था कि प्रवचन स्थल पर रात्रि में ८ बजे पहुंचा। दिल्ली के महापौर श्री केदारनाथ साहनी, मुख्यकार्यकारी पार्षद श्री राधामणजी को जुलूस की अगवानी करने के लिए पण्डाल में बहुत देर प्रतीक्षा करनी पड़ी।

दिनांक १७ दिसम्बर को निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में रामलीला ग्राउण्ड में एक विशिष्ट जनसभा का आयोजन हुआ। उसमें तीन स्टेज बनाए गए। एक स्टेज पर आचार्य व मुनिगण आसीन हुए, एक पर साध्वीवृन्द तथा मध्य में निर्मित स्टेज पर जननेता व चारो संप्रदायों के प्रमुख प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस आयोजन में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी भाग लिया। जन भाषा के अनुसार समारोह में लाखों की उपस्थिति थी।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने धार्मिक मंच की गरिमा के अनुरूप अच्छा भाषण दिया। उन्होंने भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सूत्रों की चर्चा करते हुए संग्रहवृत्ति पर तीखा प्रहार किया। अप्पाण मेव जुज्झाई का आधार बनाकर उन्होंने कहा-स्वयं से लड़ना ही सच्चा धर्म है। इसका मतलब है, अपनी बुराईयों और कमजोरियों से लड़ना। आज दूसरों से लड़ने में शक्ति का दुरूपयोग हो रहा है। यदि भगवान महावीर के उपदेश हम धारण कर लें तो सारे विश्व में शांति हो सकती है। भगवान महावीर का हमारे पर बहुत उपकार है। उनके द्वारा बताए गए सिद्धान्त सबके लिए कल्याणकारी है। उनका निर्वाण हुए पचीस सौ वर्ष हो गए है, पर उनके सिद्धान्त आज भी बहुत उपयोगी हैं। इस अवसर पर आचार्य श्री तुलसी, आचार्यश्री देशभूषणजी, मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) आदि के भी वक्तव्य हुए।

१६ नवम्बर का जुलूस और १७ नवम्बर की विराट जनसभा के कार्यक्रम इतने सफल रहे कि निर्वाण शताब्दी समारोह में एक नई चमक आ गई। सारे जैन समाज में नए उत्साह का संचार हो गया। दैनिक पत्रों ने भगवान महावीर के नामों से विशेषांक निकाले। सारे देश में भगवान महावीर के नाम की लहर सी आ गई। निर्वाण शताब्दी समारोह जैन इतिहास में चिरस्मणीय बन गया। काश ! वैसा दृश्य हम फिर दृष्टिगोचर कर सकें।

संवत्सरी एकता के प्रयास

सन् १९६४ में दिल्ली जैन समाज के चिन्तनशील श्रावकों ने यह विचार किया—यहां जितने भी जैन आचार्य हैं, उनका शिखर सम्मेलन होना चाहिए। उस समय वहां तीन ही आचार्य थे। कार्तिक शुक्ला द्वितीया (आचार्य श्री तुलसी के जन्म दिवस) के दिन दरियागंज स्थित अहिंसा मंदिर में आचार्यों का शिखर सम्मेलन निश्चित किया गया। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार तीनों आचार्यश्री वहां पधारे। प्रारंभिक शिष्टाचार के बाद न्यायाधीश ज्ञानदास ने कहा—आज का दिन दिल्लीवासियों के लिए ऐतिहासिक दिन है। हम सब श्रावक चाहते है, आप तीनों महान् आचार्य है, जैन एकता की दृष्टि से कोई ठोस निर्णय करें।

वार्तालाप का प्रारम्भ करते हुए आचार्य श्री तुलसी ने कहा—हमें इस बात का गौरव है कि जो अवसर इन शताब्दियों में किसी को नहीं मिला, वह हमें उपलब्ध हुआ हैं। हम इसका समुचित लाभ उठाकर कुछ काम करें। हमारे आराध्य एक हैं। महाव्रत और तत्वज्ञान एक है, कुछ बातों में मतभेद है। अधिक भेदवाली बातों को एक बार छोड़कर हम सामान्य भेदवाली बातों को पकड़ें ताकि समन्वय की भूमिका प्रशस्त हो सके। प्रथमबार में हम तीन बिन्दुओं पर चिंतन करें।

(१) हमारे प्रमुख पर्व पर्युषण को समग्र जैन समाज मिलकर मनाएं। यदि हम ऐसा करने में सफल हो गए तो मानना चाहिए कि हमने बहुत बड़ा काम कर लिया। ऐसा न होने से सबको कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अतः इस बिन्दु पर हम गंभीरता से विचार करें।

(२) जैनों का एक भी प्रतिनिधि —संगठन नहीं है। अब एक ऐसा संगठन हो जिसमें सभी समाजों का प्रतिनिधित्व हो। वह संगठन केवल मौलिक और

सामान्य बातों को लेकर ही काम करें।

(३) भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी को आध्यात्मिक दृष्टि से समग्र जैन समाज सामूहिक रूप से मनाए।

विचारणीय बिन्दुओं में प्रथम और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर अपने विचार प्रकट करते हुए आचार्य आनन्दऋषिजी ने कहा –श्वेताम्बरों के पर्युषण पर्व का अन्तिम या प्रमुख दिन भाद्रपद शुक्ला पंचमी है। दिगंबर समाज भी इस दिन को मानता है। यह उनका आदि दिन है। इस दिन को मुख्य समझ लिया जाए तो समन्वय में आसानी हो सकती है।

आचार्य देशभूषणजी बोले –हमें किसी भी प्रकार से समन्वय के लिए मार्ग प्रशस्त करना है। हमारे यहां प्रथम दिन क्षमा का है। क्षमा धर्म की महत्ता सदा से रही है।

चिन्तन की श्रृंखला में अपने विचार जोड़ते हुए आचार्य श्री तुलसी ने कहा –यह चिन्तन बहुत सुन्दर है। दिगम्बर लोग यदि चतुर्दशी की तरह पंचमी को भी महत्व दें तो इससे धर्म का कार्य बढ़ेगा।

वार्तालाप के बीच में अधिक मास का प्रकरण भी चला। प्रश्न यह था कि यदि चतुर्मास में श्रावण या भाद्रपद मास दो हो तो पर्युषण कब करना चाहिए ? इतिहास और परम्परा के आधार पर विस्तृत चिन्तन के बाद तीनों आचार्य इस बात पर सहमत थे कि यदि श्रावण मास अधिक हो तो पर्युषण भाद्रपद मास में तथा भाद्रपद मास अधिक हो तो पर्युषण प्रथम भाद्रपाद मास में ही होना चाहिए।

प्रतिनिधि संगठन के सन्दर्भ में तीनों आचार्य पूर्ण रूप से सहमत हो गए। आचार्य आनन्दऋषिजी ने कहा –जैन समाज का संगठन होना बहुत जरूरी है। अभी एक ट्रेक्ट निकला था, उसमें जैन समाज के बारे में बहुत अनर्गल बातें लिखी हुई थी। आचार्य देशभूषणजी बोले–इस प्रकार की बातों का प्रतिवाद अवश्य होना चाहिए। व्यक्तिशः प्रतिवाद हर कोई कर सकता है। किन्तु सामूहिक प्रतिवाद में जो ताकत है, वह व्यक्तिगत में नहीं है। अतः जहां भी जैनत्व का प्रश्न हो, वहां सबकी एक आवाज होना चाहिए।

प्रस्तुत संदर्भ में अपना चिन्तन स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री तुलसी ने

कहा–जैन धर्म या जैन समाज के बारे में असंगत तथ्य लिखने का एक कारण यह भी है कि जैनों का वैसा साहित्य कम तैयार हुआ है, जो विद्वद्भोग्य बन सके। फिर भी इस प्रकार के संकीर्ण दृष्टिकोण से जो कुछ लिखा जाता है, उसका प्रतिवाद तो अवश्य होना चाहिए। किन्तु इस प्रकार के कार्य सामूहिक हों। इस दृष्टि से मैंने एक प्रतिनिधि संगठन की बात कही हैं वह संगठन जैनधर्म के हित-संरक्षण संबंधी कार्य करेगा। प्रतिनिधि संगठन शक्तिशाली हो और समग्र जैनत्व की दृष्टि से काम करें। संभव हो तो 'भारत जैन महामण्डल' को इस रूप में ढाला जा सकता है।

विचारणीय बिन्दुओं में तीसरे बिन्दु महावीर-निर्वाण शताब्दी के बारे में आचार्यद्वय ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा –यह तो सबके लिए गौरव की बात है। इसमें किसी के दो मत हो नहीं सकते। उनकी बात सुनकर आचार्य श्री तुलसी ने कहा–२५वीं निर्वाण शताब्दी में केवल आठ वर्ष शेष रहे हैं। इसे हम सामूहिक रूप में मनाएं, यह ठीक है। अब सवाल यह है कि इस काम को आगे कौन बढ़ाएगा ? इस पर विचार करते समय फिर वही प्रतिनिधि संगठन की बात सामने आती है। संगठन कार्य की सफलता का आधार होता है। लाखों जैनों की आवाज एक साथ निकलेगी तो उसका विशेष प्रभाव होगा।

उक्त तीन मौलिक मुद्दों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों पर भी विचार-विमर्श हुआ। सरस और सौहार्दपूर्ण वातावरण में आचार्य जिन निष्कर्षों पर पहुंचे, उन्हें जानने के लिए श्रावक लोग भी उत्सुक थे। वार्तालाप कक्ष में उनको प्रवेश मिल गया। उन्होंने प्रसन्नता के साथ सारी बातें सुनी। कुछ व्यक्तियों ने अपने विचार भी रखें। जैनेन्द्र कुमारजी भी उस समय वहां उपस्थित थे। उन्होंने कहा –आज का दिन ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। प्रथम वार्तालाप में ही शुभ परिणाम निकला है, वह भविष्य की दृष्टि से बहुत आशाजनक है। मेरा अनुरोध है कि तीनों आचार्यों के संयुक्त अभिमत का एक लिखित प्रारूप तैयार हो जाए और उसे प्रकाश में लाया जाए। जैनेन्द्रजी का उक्त सुझाव सबको अच्छा लगा। उसकी क्रियान्विति के फलस्वरूप एक संयुक्त अभिमत तैयार किया गया। उसका स्वरूप अग्रांकित हैं–

कार्तिक शुक्ला द्वितीया (२६ अक्टूबर, १९६५) को अहिंसा मन्दिर, दरियागंज दिल्ली में तीन आचार्यों की एक परिषद् हुई। प्रारंभिक शिष्टाचार के

अनन्तर मूल विषय की चर्चा प्रारम्भ हुई। आदि से अन्त तक तीनों आचार्य सब विषयों में एकरस सहमत रहे। जिन विषयों पर चर्चा चली और सहमति हुई, उन विषयों का सारांश तीनों आचार्यों की सहमति से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है–

(१) पर्युषण पर्व के एक दिन का अखिल जैन समाज सामूहिक रूप से महत्त्व दे, इस दृष्टि से भाद्रवा शुक्ला पंचमी का दिन चुना गया है। क्योंकि यह दिन श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों समाजों का सन्धि दिन है। श्वेताम्बरों के पर्युषण का अन्तिम और दिगम्बरों के दस लाक्षणिकों का आदि दिन (उत्तम क्षमा का दिन) है। अनन्त चतुर्दशी को श्वेताम्बर भी धर्मतिथि के रूप में महत्त्व दें।

(२) भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी सामूहिक रूप में मनाई जाए।

(३) समग्र जैन समाज का एक प्रतिनिधि संगठन हो। भले फिर उसका दायित्व 'भारत जैन महामण्डल' संभाले।

(४) जैन धर्म के सर्वमान्य अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रसार तथा हित-संरक्षण का प्रयत्न सामूहिक रूप से किया जाए।

(५) परस्पर भ्रान्ति अथवा वैमनस्य बढ़े वैसा कोई कार्य न किया जाए।

अत्यन्त उल्लास और उत्साह से भरे वातावरण में एक कमी सबको खटक रही थी। उस समय वहां श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले कोई आचार्य नहीं थे। उनकी उपस्थिति होती तो उनका भी अभिमत मिल सकता था। इस प्रसंग मे प्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्र कुमारजी ने एक सुझाव दिया –श्रावकों का शिष्टमण्डल उनके पास जाए और आज के वार्तालाप व निष्कर्षों से उन्हें परिचित करें। इस संयुक्त अभिमत में उनकी भी सहमति प्राप्त हो जाए तो एकता की भावना और अधिक बलवती होगी। तीनों आचार्यों ने प्रसन्नता करते हुए यह कामना की कि समन्वय की दिशा में जो कदम बढ़ा है, वह निरन्तर गतिशील रहेगा।

जब आचार्यश्री तुलसी के आचार्य पदारोहण के ५० वर्ष की संपन्नता पर समाज की ओर से अमृत महोत्सव मनाया गया। उस वर्ष का चतुर्मास उदयपुर

संभाग में आमेट नगर में हुआ। वहां हैदराबाद से जैन समाज के प्रमुख लोगों का एक प्रतिनिधि मंडल आया। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी के समक्ष यह भावना व्यक्त की कि संवत्सरी पर्व एक दिन मनाया जाए। यदि जैन समाज में इस निर्णय को मान्यता मिलती है तो हम सब हैदराबादवासी इसके लिए तत्पर हैं। शिष्ट मंडल के सदस्यों के नाम है–पारस भाई जैन, हस्तीमलजी महणोत, उगमचन्दजी सुराणा और विजेन्द्र कर्णावट। शिष्ट मण्डल तीन दिन आमेट रहा। कार्यक्रमों में सहभागी बना। हस्तीमलजी महणोत ने व्याख्यान में विचार प्रकट किए। शिष्ट मंडल के विचार सुनकर आचार्यवर ने कहा–इस दृष्टि से सभी जैन संप्रदायों में एक वातावरण बन रहा है। हम भी अन्तर मन से चाहते है कि यह कार्य शीघ्र हो। हमारी ओर से कोई बाधा नहीं आएगी, यह मैं कह सकता हूं। संवत्सरी पर्व का एक दिन मनाया जाना तभी संभव है जब सभी जैनाचार्य अपने-अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर किसी एक बिन्दु पर एक मत हो जाए। तेरापंथ धर्म संघ की ओर से तिथि विशेष का केाई आग्रह नहीं हेागा। इस कार्य के लिए हम स्वयं बहुत प्रयत्नशील है।

जैन समाज एकता के सूत्र में आबद्ध हो यह आचार्यश्री तुलसी का सपना था। इस स्वप्न को साकार करने की दिशा में अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति ने एक सक्रिय कदम उठाया। जैन एकता के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लक्ष्य से एक प्रतिनिधि मंडल के द्वारा संपर्क यात्रा कराने का चिंतन किया गया। उस मंडल के सदस्य थे–कन्हैयालालजी छाजेड़, सूरजमलजी गोठी, चन्दनमल चांद, और भीकमचंद कोठारी। उस शिष्ट मंडल ने आचार्यवर का एक लिखित संदेश लेकर जैन समाज के विशिष्ट आचार्यों, साधु-साध्वियों और प्रमुख श्रावकों से मिलकर दो बिन्दुओं पर चिंतन करने का सुझाव दिया।

(१) जैन समाज में संवत्सरी महापर्व एक हो।

(२) जैन समाज का एक सर्व मान्य मंच हो।

इस प्रतिनिधि मंडल ने आचार्यवर का संदेश लेकर १२ अक्टूबर से अपनी यात्रा शुरू की। उस संदेश के अंतिम पेराग्राफ की पंक्तियां इस प्रकार हैं–संवत्सरी की एकता और एक मंच की स्थापना, यह दो बाते निश्चित हो जाती है तो यह जैनों के लिए अविस्मरणीय उपलब्धि हो जाएगी। अच्छा तो

यह रहे कि जैन आचार्यों व मुनियों का एक सम्मेलन हो जाए जिसमें हम एक दूसरे को निकटता से समझ सकें और कोई ठोस काम कर सकें। ऐसा संभव नहीं हो तो फिर प्रतिनिधियों को ही माध्यम बनाकर काम करना होगा।

जैन एकता के संदर्भ में यात्रा करने वाले सदस्य लगभग २ सप्ताह की यात्रा कर आमेट पहुंच गए। उनकी यात्रा संतोष जनक रही।

ई.स. १९८५ में १९ मार्च को आचार्य श्री तुलसी उदयपुर संभाग के भीम ग्रांम में पधारे। वहां जैन लोगों को प्रतिबोध देते हुए उन्होंने कहा –जैन समाज में जो जातिवाद और सम्प्रदायवाद की संकीर्ण दीवारें है वे टूटनी चाहिए, सबमें धार्मिक भाव का विकास होना चाहिए। अपनी परम्परा के प्रति वफादारी रखते हुए दूसरी परम्पराओं के प्रति उदार और गुणग्राहक बनना चाहिए। सारे जैन समाज का संवत्सरी महापर्व एक दिन मनाया जाए, यह सबके मानस में भावना है। पर, इसके लिए संगठित प्रयास होना चाहिए। इस कार्य में हमारा पूरा सहयोग मिलेगा।

दिनांक १० और ११ फरवरी १९८६ को उदयपुर में आचार्यवर के सानिध्य में जैन समन्वय सम्मेलन का आयोजन हुआ। १० फरवरी को प्रातः समन्वय सम्मेलन का उद्घाटन सत्र हुआ। बंबई के प्रमुख उद्योगपति श्री पुखराज लुंकड ने उद्घाटन भाषण दिया। जैन समन्वय प्रकोष्ठ की यात्राओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर प्राप्त अनेक आचार्यों मुनियों व विद्वानों के शुभकामना संदेश पढ़कर सुनाए गए। श्री नृपराज जैन व श्री किशोरचंद वर्धन आदि वक्ताओं के भाषण हुए। श्री दीपचंद गार्डी का अध्यक्षीय भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण में आचार्य श्री तुलसी के प्रति जैन एकता के विकास के लिए प्रचुरश्रम करने के लिए आभार प्रकट किया। युवाचार्य श्री महाप्रज्ञजी और साध्वी प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के भी वक्तव्य हुए। आचार्यवर ने अपने प्रवचन में कहा–हमने एक कार्य का श्री गणेश किया है। हमें सब ओर से आत्मीय व्यवहार व उदारता पूर्ण आश्वासन प्राप्त हुए है। सबकी सद्भावना ही हमारी सफलता का मूलमंत्र है। सम्मेलन का द्वितीय सत्र मेडिकल कॉलेज के विशाल सभागार में आयोजित हुआ। इस चरण को प्रतिनिधियों की अंतरंग बैठक का रूप दिया गया। इस में साहु श्रेयांस प्रसादजैन (बंबई), रिखभचंदजी कर्णावट (जोधपुर), लालचंदजी सिंघी (व्यावर), डा.

दलसुख भाई मालवणिया (अहमदाबाद), उगमचंदजी सुराणा –हस्तीमलजी महणोत (हैदराबाद), जैन विश्व भारती के कुलपति श्रीचंदजी रामपुरिया आदि ने अपने सुझाव प्रस्तुत किए। खुल कर चर्चा हुई। भारत जैन महामंडल के अंतर्गत एक समन्वय समिति का गठन किया गया। उपसंहार में आचार्यवर का वक्तव्य हुआ। त्रितीय चरण की आयोजना रात्रि में हुई। इसमें अनेक विषयों पर मुक्त चर्चा चली। चर्चा में गंभीरता होने पर भी वातावरण मधुर रहा। अनेक कार्यकर्त्ताओं में कार्य करने का उत्साह परिलक्षित हुआ। साहु श्रेयांस प्रसाद जैन ने एक सुझाव देते हुए कहा–सभी जैन सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों एवं मुनियों का एक सम्मेलन होना चाहिए। इस सम्मेलन में विवादास्पद प्रश्नों का हल निकले, यह आवश्यक है। क्योंकि श्रावक समाज तो आचार्यों और साधु-साध्वियों के मार्गदर्शन पर अवलम्बित है।

सम्मेलन का चतुर्थ चरण समापन समारोह था। प्रतिभागियों के चेहरों पर संतोष की आभा थी। श्री जौहरीमलजी पारख और हस्तीमलजी महणोत आदि ने समापन सत्र में अपने संतोषजनक विचार रखे। समागत प्रतिनिधियों ने चिंतनपूर्वक कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किए जो सर्वसंमति से स्वीकृत हो गए। आचार्यश्री तुलसी ने इस सत्र को संबोधित करते हुए कहा-यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। इस सम्मेलन के निष्कर्ष बहुत आशाप्रद एवं शुभ भविष्य के सूचक है। अनेक बार एकता की बात उठी है। पर इस बार जो आकर्षण दिखाई दिया, वह महत्वपूर्ण है। संवत्सरी की एकता के कार्य की शक्ति बढ़ाने के लिए मैं कुछ संकल्प स्वीकार करना चाहता हूं। जब तक सर्व संमति या बहुमत से इसके एक निर्णय की घोषणा न हो, तब तक मैं–

(१) स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए चीनी और चीनी से बनी हुई किसी वस्तु का प्रयोग नहीं करूंगा।

(२) स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए प्रतिदिन आधा घंटा खड़े-खड़े जाप या ध्यान करूंगा।

(३) स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञजी प्रतिदिन एक घंटा खड़े-खड़े ध्यान करेंगे।

जैन समन्वय सम्मेलन में बंबई से काफी संख्या में प्रतिनिधि आए थे।

उन सबने आचार्यश्री को मुम्बई में चतुर्मास करने का निवेदन किया। जिससे संवत्सरी की एकता व जैन एकता का कार्य तेजी से हो सके। दो दिनों से उन्होंने बहुत श्रद्धा भावना से निवेदन किया। इस पर आचार्यवर ने फरमाया—मेरा आना अभी संभव नहीं है। इसलिए मेरे प्रतिनिधि के रूप में मुनि राकेश कुमार का मुम्बई में चतुर्मास कराने का विचार है। इसका वहां पहले काफी रहना हुआ है। वहां की सभी संप्रदायों के प्रमुख लोगों से इसका अच्छा संपर्क है।

आचार्यश्री के निर्देशानुसार मैंने साथी संतों के साथ मुंबई की ओर विहार कर दिया। वहां जाने के बाद भारत जैन महामंडल के कार्यकर्ताओं के साथ नगर में विराजित आचार्यों व साधु-साध्वियों से मिलकर विचार-विमर्श किया। दूर-दूर जाने में समय और श्रम काफी लगा। कई तरह के प्रश्न इस संबंध में उपस्थित हुए। उनका आचार्यप्रवर के आशीर्वाद से संतोषजनक समाधान किया गया। एक प्रमुख आचार्यश्री ने कहा—हम चतुर्थी से तृतीया तो कर सकते हैं, पर पंचमी नहीं कर सकते। एक दिन देरी करने से हम विराधक हो जाएंगे। मैंने कहा—जैन समाज में अभी जो कालगणना चल रही है, क्या वह आगम सम्मत हैं ? हम जो पांचमास का चतुर्मास करते हैं क्या वह आगम सम्मत हैं ? क्या इससे विराधक नहीं होते ? उन आचार्यश्री ने हंसते हुए मेरी पीठ थपथपाई और कहा—इस बात का मेरे पास भी कोई उत्तर नहीं है। अन्त में उन्होंने कहा—आपके यहां एक आचार्य है, इसलिए नया चिंतन हो सकता है। हमारे यहां अनेक आचार्य हैं, इसलिए हम इस विषय पर साथ नहीं हो सकते। इस तरह मुझे नाना प्रकार की चर्चाओं का सामना करना पड़ा।

भारत जैन महामंडल की ओर से संवत्सरी की एकता पर प्रस्ताव को पारित करने के लिए एक विराट् जैन सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में भाग लेने के लिए तत्कालीन राष्ट्रपति श्री ज्ञानीजैल सिंहजी दिल्ली से आए। चारों ही जैन संप्रदायों के लगभग १० हजार भाई बहिनों ने सम्मेलन में भाग लिया। राष्ट्रपति ज्ञानीजी ने इस कार्य के लिए हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की और एकता की दिशा में आगे बढ़ने के लिए जैन समाज को धन्यवाद दिया। भारत जैन महामंडल द्वारा निर्मित एकता के प्रारूप के लिए मैंने तेरापंथी समाज की ओर से आचार्यश्री तुलसी के नाम से स्वीकृति प्रदान की।

जिस पर व्यापक हर्ष ध्वनि हुई। प्रसिद्ध उद्योगपति श्री नृपराज जैन ने भारत जैन महामंडल की अध्यक्षता की शपथ ग्रहण करने के बाद श्रमण संघ के आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज तथा अन्य कई प्रमुख स्थानकवासी आचार्यों के नाम की घोषणा की। उन्होंने कहा—इस प्रस्ताव से ये सभी आचार्य सहमत है। इससे एक सुंदर वातावरण बन गया। मूर्तिपूजक संप्रदाय में अचलगच्छ के आचार्यश्री गुणसुंदर जी महाराजजी ने भी स्वीकृति प्रदान की। कई श्रावकों ने अपनी संप्रदायों की ओर से आश्वासन दिया। सब के मन में विश्वास जगा था कि धीरे-धीरे सारे समाज में संवत्सरी पर्व की एक तिथि मान्य हो जाएगी। पर खेद का विषय है, जिन्होंने स्वीकृति दी थी वे भी १-२ वर्ष बाद सांप्रदायिक दबाव में आकर निर्णय से मुकर गए।

मधुर मिलन के प्रसंग

वि.स. २०११ (ई.स. १९५४) में आचार्य श्री तुलसी का मुम्बई महानगर में चतुर्मास था। उस समय वहां जैन एकता के प्रबल समर्थक आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि अस्वस्थ अवस्था में विराजमान थे। उनके प्रति आचार्य श्री के मानस में बहुत आदर था। इसलिए उनसे मिलने के लिए आचार्य श्री तुलसी उनके स्थान पर पधारे। विविध विषयों पर वार्त्तालाप हुआ। आचार्य श्री के पधारने पर आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि को बहुत प्रसन्नता हुई, उन्हें बहुत आत्म समाधि मिली। वे बाद में बहुत अधिक अस्वस्थ हो गए और थोड़े दिनों के बाद उनका स्वर्गारोहण हो गया। उस समय उनकी सम्प्रदाय के संत और श्रावक आचार्य श्री तुलसी से मिले। उन्होंने निवेदन किया—आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि का स्वर्गवास हो गया, आप सबको मंगलपाठ सुनाने पधारे। आचार्य श्री उसी समय मुनि मंडल को साथ लेकर मंगलपाठ सुनाने पधारे। इस घटना का मुम्बई के जैन समाज पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ा।

मुम्बई शहर के चतुर्मास से आचार्य श्री तुलसी की विद्वत्ता और समन्वयवृत्ति से वहां चतुर्मास कर रहे अन्य सम्प्रदायों के साधु-साध्वियों में भी बहुत आकर्षण भाव बढ़ा। मुम्बई शहर से विहार करते हुए आचार्य श्री माटुंगा पधारे, वहां नेमीसूरिजी के शिष्य मुनि यशोभद्रविजयजी से मिलना हुआ। विविध प्रकार के तात्विक विषयों पर परिचर्चा हुई। वहां से मार्गवर्ती क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए थाना पधारे। वहां पर प्रसिद्ध आचार्य श्री विजयप्रेमसूरिजी विराज रहे थे। उनके सहवर्ती संत विहार के समय मिलने के लिए आए। इस लिए विहार में एक घण्टा लगभग विलम्ब हुआ। उन्होंने निम्न प्रश्न प्रस्तुत किए —(१) बिम्ब की भाव पूजा होती है या नहीं ? (२) प्रतिमा वन्दनीय है या नहीं ? (३) कितने और कौन से आगम आपको मान्य हैं ? (४) तेरापंथी

और स्थानकवासी संप्रदाय में क्या अन्तर हैं ? (५) आज के तेरापंथ और पुराने तेरापंथ में क्या कोई अन्तर हैं ? आचार्यवर ने इन प्रश्नों का समाधान किया। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के उन संतों की जिज्ञासा और सद्भावना प्रशंसनीय थी। वहां से पूना की ओर विहार किया। दिनांक १२ फरवरी को वारवाही ग्राम में मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की साध्वियां मिली। उन्होंने आगम-प्रामाण्य अहिंसा व दान-दया आदि विषयों पर चर्चा की। आचार्यवर ने उनका समाधान किया। वे बहुत प्रसन्न हुई।

वि.स. २०१५ में आगरा नगर में आचार्य श्री तुलसी का पदार्पण हुआ। इसके पूर्व भी वि.स. २००७ में दिल्ली के मार्ग में आगरा पधारे। उस समय वहां विरोध का वातावरण था। पर जब आठ वर्षों के बाद पधारे तब श्रद्धा और स्वागत के फूल बिछे थे। उस समय आचार्य श्री का रतनमुनि हाईस्कूल के प्रांगण में स्वागत का कार्यक्रम रहा। संसद सदस्य सेठ अचलसिंहजी ने स्वागत भाषण किया। कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मण्डी की ओर पधार रहे थे। रस्ते में सेठ अचलसिंहजी आदि प्रमुख लोगों ने मार्ग बदलने का निवेदन किया। आचार्य श्री ने पूछा इधर क्या हैं ? उन्होंने बताया इधर जैन स्थानक है, वहां उपाध्याय अमरमुनिजी विराजते है। आचार्य श्री ने आग्रह मानकर मार्ग बदला। स्थानक की सीढ़ियों पर अमरमुनिजी मिले। उन्होंने मिलते ही कहा—आप हमारे से आगे निकल गए। आप यहां तक पधार गए, मैं दरवाजे तक भी नहीं आ सका। थोड़ी देर खड़े-खड़े वर्त्तालाप हुआ। फिर आचार्य श्री ने कहा —अब हमें जाना है, वहां जा कर गौचरी करना है। अमरमुनिजी ने कहा—आने के बाद जाना आपके हाथ में नहीं है। स्थानक बहुत बड़ा है। आज आपको आहार यहीं करना है। आसपास के श्रावक बहुत भावना भक्ति रखते है। आप संतो को गोचरी के लिए भेजें। हम आपस में विचार-विमर्श करेंगे। आचार्यवर ने आग्रह का आदर करके वहां थोड़ी देर ठहरने का निर्णय किया। अमरमुनिजी आचार्य श्री को भीतर ले गए। खाली कमरों में ठहरने की व्यवस्था की। आसपास के श्रावक संतो को अपने घरों में गोचरी के लिए ले गए। इस अवधि में उपाध्याय श्री जी ने आचार्यवर के साथ कुछ देर तक वार्तालाप किया। इतने में संत गोचरी लेकर आ गए तब आचार्यवर ने भी आहार किया और अमरमुनिजी ने भी आहार किया। उसके बाद अमरमुनिजी

फिर आ गए। वार्तालाप का दूसरा क्रम चालू हुआ। जहां आचार्य श्री ठहरे हुए थे, वहां उपाध्यायश्रीजी के द्वारा लिखित साहित्य पड़ा था। मुनि श्री नथमलजी (आचार्य श्री महाप्रज्ञजी) उन पुस्तकों के कुछ पृष्ठ देख रहे थे। तब अमरमुनिजी ने कहा —आप क्या देख रहे हैं ? मुनिश्री नथमलजी ने कहा—आप की पुस्तकों में कुछ तेरापंथ विरोधी चर्चाएं है। उनको देख रहा हूं। तब उन्होंने कहा —यह चर्चाएं पहले संस्करण में थी। यह दूसरा संस्करण है, इसमें तेरापंथ विरोधी चर्चाओं को निकाल दिया है। अब वह आपको नहीं मिलेगी।

विचार-विमर्श के क्रम में आगम साहित्य पर चर्चा हुई। अमरमुनिजी ने कहा—आपके यहां आगम साहित्य का कार्य बहुत अच्छा हो रहा है। आचार्यश्री ने कहा—मेरी भावना है, आगम साहित्य की दृष्टि से सभी सम्प्रदायों के प्रमुख संतो की संगीति का आयोजन हो। उपाध्यायश्री ने कहा—संगीति कैसे होगी ? आपके यहां एक आचार्य है। हमारे यहां अनेक परम्पराएं है। इसलिए वर्तमान स्थिति में संगीति संभव नहीं है। आचार्यश्री ने पूछा —आपके यहां श्रमण संघ की क्या स्थिति हैं ? उन्होंने कहा —श्रमण संघ की स्थिति संतोष जनक नहीं है। संवत्सरी और माईक के संबंध में परस्पर सहमति हो जाती तो अच्छा था। पर, अभी तक नहीं हो पा रही है। वार्तालाप के उपसंहार में अमरमुनिजी ने कहा —आचार्यश्री ! आप स्वास्थ्य का ध्यान कम रखते है। आपका स्वास्थ्य जैनशासन की सम्पत्ति है। लगभग दो घण्टे की यह मधुर और सौहार्दपूर्ण चर्चा सम्पन्न हुई। इस प्रसंग से जैन एकता का एक नया प्रसंग बन गया। आगरा प्रवास में आचार्यश्री और अमरमुनिजी का एक संयुक्त प्रवचन भी हुआ। जैन एकता की दृष्टि से आगरा प्रवास बहुत सफल रहा।

२० जनवरी, १९६५ को जोधपुर में मध्यान्ह के समय संगीत भवन में आचार्यश्री तुलसी का श्रमण संघ के उपाध्यायश्री हस्तीमलजी महाराज तथा पुष्करमुनिजी महाराज से जैन एकता के सूत्रों पर विचार-विमर्श का कार्यक्रम रहा। उनके साथ १३ तथा आचार्यवर के साथ ३५ साधु थे। संगीत भवन दोनों प्रवास स्थलों के मध्य में था। सबके बैठने की व्यवस्था समआसन पर की गई। शिष्टाचार पूर्वक जैन समन्वय के सूत्रों का चिंतन चला। दोनों और से वातावरण बहुत सौहार्दपूर्ण रहा। संवत्सरी के विषयो में उन्होंने अपनी परम्परा

बताई, आचार्यवर ने तेरापंथ की परम्परा बताई। भिक्खू दृष्टान्त के संबंध में भी चर्चा चली।

दिनांक २३ जनवरी को आचार्यश्री का जोधपुर से बालोतरा की ओर विहार हुआ। थोड़ी दूर पधारते ही उपाध्यायश्री हस्तीमलजी महाराज का दो संतो के साथ मार्ग में फिर मिलना हुआ। २० जनवरी के वार्तालाप के लिए प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने तेरापंथ के प्राचीन साहित्य को देखने की भी भावना प्रकट की। आचार्यश्री ने कहा —जोधपुर में हम संतो को छोड़ कर जा रहे है, आप इस विषय में उनके साथ परिचर्चा करें तो ठीक रहेगा।

सन् १९६५ के दिल्ली चतुर्मास में क्षमा दिवस के कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद आचार्यश्री आनन्दऋषिजी ने आचार्य श्री तुलसी से स्थानक में पधारने के लिए आग्रह पूर्वक अनुरोध किया। उनका आग्रह टालना संभव नहीं था। स्थानक में पधारने पर आचार्यश्री आनन्दऋषिजी ने कहा—इस जैन भवन में आपका स्वागत है। उन्होंने प्रेम से कहा —आचार्यश्री ! आज आपको यहां आहार करना होगा। हम एक ही वृक्ष की दो शाखाएं है। आचार्य श्री तुलसी ने कहा —यहां आहार करना अभी संभव नहीं है, पर थोड़ी देर बैठकर आपसे वार्तालाप करेंगे। आचार्यश्री आनन्दऋषिजी ने वहां चलने वाली प्रवृत्तियों की जानकारी दी। आचार्य श्री तुलसी ने कहा —आपकी सद्भावना देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। हम सब एकता के सूत्र में बंध कर यशस्वी जैन शासन का गौरव बढ़ाए। संघ के मंत्रीजी ने खड़े होकर कहा—दो आचार्यों का मिलन हमारे लिए बहुत गौरव का विषय है। आप जैन एकता की दृष्टि से जो भी मार्ग दर्शन करेंगे, हम उसका अनुशरण करेगें। दोनों आचार्यों में सौहार्दपूर्ण चर्चाएं हुई। आचार्यश्री आनन्दऋषिजी अवस्था से उस समय वृद्ध थे, पर विचारों से युवा थे। जब आचार्य श्री तुलसी विहार करने लगे तब आचार्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज सीढ़ियों में साथ पधारे और अनुरोध किया—आप फिर आने का ध्यान रखें, मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

६ दिसम्बर १९६५ का प्रभात। आचार्य श्री तुलसी अपनी शिष्य मण्डली के साथ 'सदर बाजार' से देवनगर जा रहे थे। मार्ग में 'डिप्टीगंज' कॉलोनी है। वहां के जैन स्थानक में 'वर्द्धमान श्रमण संघ' के आचार्य आनन्द ऋषिजी महाराज प्रवास कर रहे थे। पूर्व सूचना दिए बिना ही अचानक आचार्य

श्री तुलसी स्थानक में पधारे। जानकारी मिलते ही आचार्य आनन्दऋषिजी पट्ट से उतरकर सामने आए। उन्होंने आचार्यश्री के आकस्मिक आगमन पर प्रसन्नता प्रकट की। बहुत सौहार्दपूर्ण वातावरण रहा। औपचारिक वार्तालाप के बाद दोनों आचार्यों ने जैन एकता के मुद्दों पर एकान्त में बात की। आचार्य श्री तुलसी जाने के लिए उद्यत हुए तो आचार्यश्री आनन्दऋषिजी नीचे तक आचार्यश्री के साथ आए और आचार्य श्री तुलसी को विदा करते हुए बोले—हमारा यह सात्त्विक सौहार्द द्वितीया के चांद की तरह सदैव बढ़ता रहे। उनकी आत्मीयताभरी बात सुनकर आचार्य श्री तुलसी ने कहा—अब तो सौहार्द से भी आगे हमारी आत्मीयता जुड़ गई है। आपकी विनम्रता और मिलनसारिता हमारे लिए अविस्मरणीय है। काश ! आचार्य आनन्दऋषिजी की विशेषताएं अन्य साधुओं में भी संक्रांत हो पाती तो जैन संप्रदायों के बीच आई हुई दूरी समाप्त हो जाती।''

ई.स. १९६७ में आचार्य श्री तुलसी ने गुजरात राज्य की यात्रा की। अप्रैल माह में श्रद्धालु क्षेत्र बाव मे पधारना हुआ। वहां तीस अप्रैल को विद्यालय भवन में आचार्य विजयओंकारसूरि से मिलना व वार्तालाप का कार्यक्रम रहा, लगभग ५२ मिनिट तक बहुत सौहार्दपूर्ण बातचीत हुई। उनके निवेदन पर आचार्य श्री तुलसी उपाश्रय में भी पधारे। वहां आचार्य श्री विजयभद्रसूरि से मिलना हुआ। वे बहुत वृद्ध थे, चलने फिरने में असमर्थ थे। जैन एकता-समन्वय की दृष्टि से यह मिलन प्रसंग बहुत उपयोगी रहा। बाव से विहार कर गुजरात के कच्छ प्रदेश में पधारे। वहां अनेक साधु-साध्वियां मिली। विचारों का आदान-प्रदान बहुत सरस रहा।

पालीताणा के शत्रुंजय विहार में आचार्य विजयअमृतसूरि और आचार्य धुरंधरसूरि आदि साधु प्रवास कर रहे थे वहां आचार्यवर की सामूहिक गोष्ठी हुई। लगभग २ घण्टे तक गोष्ठी चली। जिस समय आचार्यवर वहां पधारे दो साधु अगवानी में खड़े थे, आचार्य धुरंधरसूरिजी सीढ़ियों के पास खड़े थे। वे आचार्यश्री को विजयअमृतसूरि के पास ले गये। वहां सहज ही एक विस्तृत गोष्ठी का आयोजन हो गया। श्रीअमृतसूरिजी ने अपने संघ की प्रगति के बारे में विस्तार से बताया। आचार्य श्री तुलसी ने कहा —पालीताणा में नालन्दा की तरह श्रुत साधना का कोई विशेष केन्द्र होना चाहिए। जो संसार का ध्यान

प्राच्य विद्याओं की ओर आकृष्ट कर सके। आचार्यश्री ने आगे कहा —जैनों का एक प्रतिनिधि संगठन होना चाहिए, जो पूरे जैन समाज का प्रतिनिधित्व कर सके।

जैन शासन की प्रभावना और जैन एकता की दृष्टि से आचार्यश्री ने जो बिन्दु प्रस्तुत किए, उनसे सहमत होते हुए आचार्य विजयअमृतसूरि बोले —आचार्यजी ! आपने जो कहा वह ठीक है। ऐसे अनेक कार्य है जो जरूरी होने पर भी नहीं हो रहे है। कम से कम एक संगठन ऐसा होना चाहिए जो जैन धर्म के हितों की रक्षा करे। आगमअनुसंधान के बारे में चर्चा हुई। कुछ अन्य विषयों पर भी विचार-विमर्श चला। आचार्य वियजअमृतसूरि ने आचार्य श्री तुलसी को प्लास्टिक की कलात्मक डिबिया में प्लास्टिक की एक माला भेंट की, जिसे प्रेम का उपहार मानकर आचार्यश्री ने स्वीकार किया। गोष्ठी में लगभग एक सौ साधु-साध्वियों की उपस्थिति थी। वातावरण बहुत सौहार्दपूर्ण रहा। पालीताणा मे आचार्य श्री तुलसी का मन बहुत प्रसन्न रहा। वहां के लोगों ने श्रद्धा भक्ति का अच्छा परिचय दिया। वहां आचार्य श्री तुलसी तीन दिन विराजे, फिर भी समय की कमी का अनुभव हुआ।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध और विचारशील मुनिश्री जनकविजयजी अणुव्रत भवन आए। वे दो दिनों तक आचार्यश्री तुलसी के सानिध्य में रहे। उन्होंने जैन धर्म से संबंधित विविध विषयों पर आचार्यश्री और मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) से परिचर्चा की। निर्वाण शताब्दी के संबंध में भी वार्तालाप हुआ। मुनि जनकविजयजी ने निवेदन किया—आचार्यश्री विजयसमुद्रसूरिजी दिल्ली पधार रहे हैं, उनके स्वागत कार्यक्रम में आपको पधारना है। आचार्यवर ने स्वीकृति प्रदान की। मुनि जनकविजयजी ने वहां से जाते समय कहा—आचार्यश्री! आपसे मिल कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आप जैसी उदारता और प्रगतिशीलता सभी आचार्यों में आ जाए तो जैन शासन की बहुत प्रभावना हो सकती है।

ई.स. १९७९ में आचार्य श्री तुलसी ने पंजाब की यात्रा की। १२ जून को प्रसिद्ध संत विमलमुनिजी द्वारा स्थापित स्कूल में प्रवास किया। विमलमुनि आचार्यश्री के आगमन की सूचना से बहुत प्रसन्न हुए। वे एक दिन पहले ही स्कूल में आ गए। उन्होंने आचार्य श्री का भावविभोर होकर स्वागत किया।

आचार्यश्री ने अपने वक्तव्य में जैन एकता पर विस्तार से प्रकाश डाला। विमलमुनि ने आचार्यश्री के साथ लम्बे समय तक विचार-विमर्श किया। आचार्यश्री ने कहा—हम लोग रूढ़ नहीं हैं, चिंतनपूर्वक परिवर्तन करने में हमारा विश्वास है। साधु संघ में स्वच्छन्दता नहीं बढ़नी चाहिए। विमलमुनिजी ने कहा—मैं आपके विचारों से सहमत हूं। मुझे यह प्रसन्नता है, आप चिंतनपूर्वक परिवर्तन कर रहे है और विकास पथ पर आगे बढ़ रहे है।

जैन एकता के विविध आयोजन

ई.स. १९६४ में मई माह में आचार्यश्री तुलसी दिल्ली नगर में विराजमान थे। उस समय स्थानवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मुनि रत्नचन्दजी महाराज के स्वर्गारोहण शताब्दी समारोह का कार्यक्रम आयोजित हुआ। आयोजन स्थल कमला नगर था। वहां से आचार्य श्री का प्रवास स्थल बहुत दूर था। फिर भी स्थानकवासी समाज के श्रावकों की भावना को देख कर तथा जैन एकता और प्रभावना की दृष्टि से आयोजन में पधारे। प्रवचन में पारस्परिक सौहार्द पर विशेष बल दिया। अच्छा वातावरण रहा। प्रसंग वश जैन समाज के एक सुदृढ़ संगठन के निर्माण पर बल दिया।

दिल्ली से भीषण गर्मी में विहार कर आचार्य श्री ने ई.स. १९६४ का चतुर्मास राजस्थान के प्रसिद्ध नगर बीकानेर में किया। वहां वीरचन्द गांधी की जन्म शताब्दी का आयोजन था। उन्होंने शिकागो में अयोजित विश्व धर्म परिषद् में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया। उनको वहां जाने की प्रेरणा देने वाले थे आचार्य श्री विजयानन्दसूरि। वीरचन्द गांधी ने परिषद् में जैन धर्म के संबंध मे अच्छे वक्तव्य दिए। उनका वहां अच्छा प्रभाव पड़ा। विदेशों में जैन धर्म पहुंचाने में उनका प्रमुख योगदान रहा। इसके फलस्वरूप उनकी जन्म-शताब्दी मनाई गई। इस कार्यक्रम का आयोजक था बीकानेर का महावीर जैन मण्डल। स्थान था कोचरों का चौंक। आचार्यवर और उनके साथ के संतों के अलावा तीन संत और तीस साध्वियां कार्यक्रम में उपस्थित थी। आयोजन के बाद आचार्यवर से मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की साध्वियों ने वार्तालाप किया।

१९६५ में आचार्यवर का दिल्ली महानगर में चतुर्मास हुआ। दि. १२ सितम्बर को वहां भारत जैन महामण्डल की ओर से क्षमा दिवस का आयोजन बारादरी स्थानक के पीछे विशाल ग्राउण्ड में रखा गया। यद्यपि यह कार्यक्रम

प्रतिवर्ष रखा जाता है, पर उस वर्ष भारत-पाकिस्तान में युद्ध चल रहा था। इसके साथ उस समय प्रसिद्ध जैन आचार्यों का सानिध्य प्राप्त था। इसलिए इस कार्यक्रम का आयोजन विशाल स्तर पर रखा गया। अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष सरदार हुकुमसिंह ने की। उद्घाटन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने किया। दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्यश्री देशभूषणजी, स्थानकवासी संप्रदाय के आचार्यश्री आनन्दऋषिजी तथा तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्यश्री तुलसीजी के सानिध्य में कार्यक्रम आयोजित था। तीनों आचार्यों ने क्षमा दिवस के महत्त्व पर प्रकाश डाला तथा जैन एकता की दृष्टि से मार्मिक वक्तव्य दिया। कार्यक्रम कुछ लम्बा चला। प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए चिंतन के कई बिन्दु सामने आए। उपस्थिति लगभग १० हजार थी।

ई.स. १९७१ दिसम्बर में आचार्यवर बीकानेर के निकटवर्ती भीनासर मे विराजमान थे। वहां कोचर बन्धुओं ने निवेदन किया कि आप हमारे मन्दिर में पधारे। उस दिन पार्श्वनाथ जयंती थी। व्याख्यान में भगवान पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र का विवेचन किया। उस दिन व्यस्तता थी, फिर भी आचार्यवर मंदिर में पधारे, वहां तीर्थंकरों का जाप किया, भजन गाया, बालिकाओं का कार्यक्रम देखा। वातावरण सुन्दर रहा।

भीनासर में जैन सम्मेलन का कार्यक्रम हुआ। उसमें जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचंद नाहटा ने अपने वक्तव्य में कहा—जैन धर्म के सिद्धान्त बहुत मार्मिक है। पर, भगवान महावीर की वाणी प्राकृत भाषा में है। उस भाषा को पढ़ने के लिए व्यवस्थित पाठ्यक्रम बनना चाहिए।

सम्मेलन में स्थानकवासी समाज के वरिष्ठ श्रावक श्री प्रतापमलजी बांठिया, उद्योग मण्डल के अध्यक्ष श्री भंवरलालजी चोरड़िया, नगर पार्षद श्री भंवरलालजी कोठारी, जैन विश्व भारती के मंत्री श्री महावीरराजजी गेलड़ा, वीरेन्द्र चोपड़ा आदि ने प्रेरक विचार प्रकट किए। मुनिश्री नथमलजी (आचार्य श्री महाप्रज्ञजी) का भी भाषण हुआ। आचार्यवर ने अपने वक्तव्य में कहा—हम भगवान महावीर के अनुयायी है। उनका नाम सारे संसार में फैले, इस ओर हमें ध्यान देना चाहिए। इसके लिए जैन समाज का एक संगठन व्यवस्थित रूप में होना चाहिए।

सन् १९७४ में स्वर्गीय दिगम्बर आचार्यश्री शांतिसागरजी महाराज के एक सौ तीसरे जन्म जयंती समारोह में आचार्यश्री तुलसी पधारे। यह कार्यक्रम दिल्ली के दरियागंज में आयोजित हुआ था। आचार्य श्री तुलसी ने आचार्यश्री शांतिसागरजी महाराज के संबंध में बोलते हुए कहा—वे बहुत प्रभावशाली और महान् आचार्य थे, उनके ऊंचे आदर्शों से सबको प्रेरणा लेनी चाहिए। आचार्यवर ने आगे कहा—जैन समाज में आज एकता और समन्वय की बहुत आवश्यकता है। भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी का सुन्दर अवसर आया है। हम सबको संगठित होकर इसका लाभ उठाना चाहिए। मुनिश्री विद्यानन्दजी ने आचार्यश्री शांतिसागरजी महाराज के साधनामय जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने आगे कहा—मेरी भावना का आदर करके आचार्यश्री तुलसी यहां पधारे है तथा इस समारोह में सम्मिलित हुए है। आचार्यश्री ने जैन एकता और प्रभावना की दृष्टि से महान कार्य किया है। उनके दिल्ली आगमन से २५वीं निर्वाण शताब्दी के समारोह को बहुत बल मिला है। इस अवसर पर मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) का प्रभावशाली वक्तव्य हुआ। इस समारोह में हजारों दिंगबर जैन भाई-बहिन उपस्थित थे।

श्वेतांबर मूर्तिपूजक संप्रदाय के वरिष्ठ आचार्यश्री विजयसमुद्रसूरि का निर्वाण शताब्दी समारोह मे सम्मिलित होने के लिए आगमन हुआ। लाल किले के बाहर उनके स्वागत समारोह का आयोजन हुआ। उस वर्ष की परम्परा के अनुसार श्वेतांबर-दिगम्बर सभी सम्प्रदायों के आचार्य व प्रमुख मुनि कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। सबने स्वागत के साथ निर्वाण शताब्दी के कार्यक्रमों को सामूहिक रूप से मनाने पर विचार प्रकट किए। आचार्यश्री तुलसी का वक्तव्य बहुत प्रेरक और प्रभावशाली रहा।

१८ अगस्त को वीरनगर में जैन एकता सम्मेलन का कार्यक्रम रहा। चारों जैन सम्प्रदायों का सम्मिलित कार्यक्रम होने के कारण उपस्थिति बहुत विशाल थी। इस कार्यक्रम से आचार्यश्री तुलसी को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा—हमें एक-दूसरे को सहन करना चाहिए, तभी हम जैन एकता का विकास कर सकते हैं तथा निर्वाण शताब्दी के इस पावन प्रसंग को सफल बना सकते है। जैन एकता सम्मेलन में मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) मुनिश्री सुशील कुमारजी तथा साध्वी श्री मृगावती

आदि के वक्तव्य हुए। दोपहर में सभी संप्रदायों के साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी हुई, कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर चिन्तन किया गया।

१९८३ में अहमदाबाद से विहार कर आचार्यश्री तुलसी बालोतरा चतुर्मास के लिए पधारते हुए दिनांक २५ मई को ऐतिहासिक नगर पाटन में पधारें। वहां हेमचन्द्र ग्रंथागार में पधारें। डा. सेवन्ती भाई शाह ने ग्रंथागार में संगृहीत ग्रंथो के बारे में जानकारी दी। ग्रंथागार में उपस्थित जन समूह को संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने कहा-कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य जैन जगत के प्रभास्वर आचार्य थे। उन्होंने लाखों पद्यों की रचना की। उनके द्वारा निर्मित कई ग्रंथ विद्यार्थी साधु-साध्वियों को पढ़ाए जाते है। जो कार्य कई विद्वान मिलकर नहीं कर सकते वह उन्होंने अकेले ही कर दिया। तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्य हेमचन्द्र के साहित्य पर विशेष कार्य हो रहा हैं। इस ग्रंथागार के संबंध में मैं वर्षो से सुन रहा था। आज यहां आकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।

पाटन में जैन एकता का अच्छा कार्य हुआ। स्थानकवासी संघ के प्रमुख श्री वाडीभाई शाह तथा मूर्तिपूजक समाज के वरिष्ठ श्रावक श्री चम्पक भाई वलाणी से जैन एकता के संबंध में अच्छी चर्चाएं हुई वे बहुत प्रभावित हुए।

राजस्थान की शिक्षा नगरी अजमेर सदा से सभी धर्म संप्रदायों में शांति और समन्वय का केन्द्र रहा है। वहां का वातावरण आचार्यश्री तुलसी की रूचि के अनुकूल था। वे अपने जीवन मे वहां कई बार पधारें। १९९१ के मार्च मास में भी वहां पधारें। उस समय स्थानकवासी समाज के श्रावक संघ के विशेष निवेदन पर लाखन कोटडी स्थित महावीर भवन में एक दिन का प्रवास किया। प्रातः कालीन प्रवचन में स्थानकवासी समाज के अध्यक्षश्री सम्पतमलजी लोढ़ा मंत्री श्री जीतमलजी चोपड़ा ने संघ की ओर से आचार्यश्री का स्वागत किया। श्रीलोढ़ाजी ने कहा—गुरूदेव ! आप इस भवन में चतुर्मास करें। आप इतिहास पुरूष है। हम चाहते है कि आप इतिहास में एक नए अध्याय का सृजन करें। आचार्यवर ने अपने वक्तव्य में कहा—अजमेर को मैं धार्मिक समन्वय की दृष्टि से मेरी रूचि का क्षेत्र मानता हूं। यहां मेरा कई बार आना हुआ है। जब-जब मैं यहां आया हूं, धार्मिक एकता की दृष्टि से नया अध्याय बना है। आज इस प्रसिद्ध स्थानक में मैं पहली बार आया हूं। आप लोगों की भक्ति भावना का मैं सम्मान करता हूं। हमें अपनी-अपनी संप्रदाय में वफादारी रखते हुए दूसरी

संप्रदायों के प्रति उदार और गुणग्राहक होना चाहिए। हर श्रावक की जीवनशैली जैनत्व के अनुकूल होनी चाहिए।

ई.स. १९९२, १९ जनवरी को मंदिरमार्गी संप्रदाय के प्रमुख आचार्यश्री विजयइन्द्रदिन्नसूरि जैन विश्व भारती (लाड़नूं) में आए। सुधर्मा सभा में संस्था के अधिकारियों ने उनका स्वागत किया। महाश्रमण मुनि मुदित कुमारजी (आचार्यश्री महाश्रमणजी) ने विश्व भारती के संबंध में जानकारी दी। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) ने जैन एकता के संबंध में चार दशक से चल रहे प्रयासों की चर्चा की और जैन सिद्धान्तों को विश्वव्यापी बनाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने पर बल दिया। आचार्य विजयइन्द्रदिन्नसूरि ने अपने वक्तव्य में कहा —हमारे गुरू विजयवल्लभसूरि चाहते थे कि जैन समाज का अपना एक विश्व विद्यालय हो, वह सपना जैन विश्व भारती ने साकार किया है। मेरा यहां आने का एक लक्ष्य इसे देखना भी था। आचार्यश्री तुलसी के दूरदर्शी चिंतन का यह परिणाम है। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। मैं चाहता हूं कि समूचा जैन समाज इसका गौरव अनुभव करे और इसके साथ अपने आप को जोड़े। आचार्यश्री तुलसी ने अपने वक्तव्य में कहा —जैन समाज गौरवशाली है उसके पास दुनिया को देने के लिए बहुत कुछ है। हमारे सिद्धान्त मानव समाज को नई दिशा दे सकते हैं। इसके लिए संपूर्ण जैन समाज को एक जूट होकर काम करना होगा। जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय जैन समाज का एक मात्र विश्व विद्यालय है। इसके साथ विद्वान आचार्य और मुनि जुड़ेंगे तो जैन समाज का गौरव बढ़ेगा।

आचार्यश्री विजयइन्द्रदिन्नसूरि दिनभर विश्व भारती में रहे। दो बैठकों में उन्होंने आचर्याश्री तुलसी से बातचीत की। दोपहर में उन्होंने विश्व भारती के परिसर में चल रही विभिन्न प्रवृत्तियों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। वातावरण बहुत उल्लासपूर्ण रहा।

कर्नाटक विधानसभा में श्रद्धांजलि

ई. सं. १९९७ में आचार्य श्री तुलसी का स्वर्गवास हुआ तब मेरा चातुर्मास बेंगलोर में था। उस समय मेरे मानस में यह विचार आया कि आचार्य श्री तुलसी की राष्ट्र के लिए महान् सेवा रही है, इस अवसर पर कर्नाटक विधानसभा में उन्हें श्रद्धांजलि प्रदान हो, इसके लिए प्रयास होना चाहिए। मैंने वहां के प्रमुख कार्यकर्ताओं से इस विषय में विचार-विमर्श किया तो उन्होंने कहा—कर्नाटक विधानसभा में यह होना असंभव है, हमारे समाज का यहां एक भी विधायक नहीं है। इन वर्षों में यहां सार्वजनिक संपर्क का कोई प्रयास भी नहीं हुआ है। मैंने कर्नाटक विधानसभा के अध्यक्ष रमेशचन्दजी से मिलने का चिंतन किया। इस कार्य में अमृतलालजी छाजेड़ मेरे सहयोगी बने। उन्होंने मिलने का समय निश्चित कर लिया।

जब मैं विधानसभाध्यक्ष के निवास पर गया तो वे बंगले के द्वार तक अगवानी करने आए। हार्दिक नम्रता से प्रणाम करते हुए मुझे भीतर ले गए। उन्होंने कहा—मैं जैन धर्म से बहुत प्रभावित हूं, पर मेरा किसी जैन साधु से मिलना नहीं हुआ। आपने यहां पधार कर मुझे दर्शन दिए, इसके लिए मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूं। उन्होंने आगे कहा-आप जो भी आदेश देंगे मैं उसे पूरा करने का प्रयास करूंगा। मैंने आचार्य श्री तुलसी का संक्षेप में परिचय दिया और अणुव्रत के माध्यम से मानवता के लिए उनकी सेवाओं की जानकारी दी।

उन्होंने कहा—मैंने आचार्य श्री तुलसी और अणुव्रत के संबंध में बहुत सुना है, पर मेरा कभी संपर्क नहीं हुआ। मैंने कहा-अभी २३ जून को राजस्थान में उनका स्वर्गवास हो गया है। इतने बड़े राष्ट्र संत को विधानसभा में श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिए। अध्यक्ष रमेशचन्द जी ने कहा-यह तो आपने अच्छा सुझाव दिया है। इसमें संभवतः कोई कठिनाई नहीं होगी। फिर भी मैं मुख्यमंत्री

और विपक्ष के नेता से चर्चा कर पांच-चार दिनों में आपके दर्शन करूंगा। अध्यक्ष महोदय मुख्यमंत्री आदि कई नेताओं से चर्चा कर अमृतलालजी के साथ तेरापंथ भवन में मेरे से मिले, उन्होंने कहा हमारे मुख्यमंत्री बैंगलोर में आचार्य श्री तुलसी के दर्शन कर चुके हैं, वे अणुव्रत के कार्यक्रम से अच्छी तरह से परिचित हैं। कुछ दिनों बाद विधानसभा का अधिवेशन शुरू होने वाला है, उसमें हम आचार्य श्री तुलसी को श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। उस अवधि में पांच-सात विधायकों से मेरा और संपर्क हुआ। उनमें कुछ विधायक आचार्यप्रवर के बेंगलोर चतुर्मास से संपर्क में आए हुए थे। आचार्य श्री तुलसी के प्रति देश के प्रबुद्धजनों में कितना श्रद्धा का भाव था मुझे श्रद्धांजलि के इस कार्यक्रम से ओर अधिक अनुभव हुआ। बेंगलोर के प्रमुख कार्यकर्ताओं से जब पहले मैंने विचार-विमर्श किया तो वे इसे असंभव मान रहे थे, पर सारा कार्यक्रम बहुत सहजता से संपन्न हुआ।

जिस दिन विधानसभा और विधान परिषद् का सत्र प्रारंभ हुआ उसी दिन आचार्य श्री तुलसी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। बेंगलोर से प्रकाशित राजस्थान पत्रिका में दूसरे दिन प्रथम पृष्ट पर श्रद्धांजलि कार्यक्रम का समाचार विस्तार से प्रकाशित हुआ। जिससे सारे समाज में अत्यन्त हर्ष का अनुभव हुआ। दोनों सदनों में श्रद्धांजलि कार्यक्रम की रिपोर्ट हमें दो प्रमुख कार्यकर्ता ललित आच्छा और दीपचंद नाहर के माध्यम से प्राप्त हुई जो विधानसभा की कार्यवाही में अंकित की गई। वह इस प्रकार है—

विधानसभा के अध्यक्ष श्री रमेशचन्दजी ने श्रद्धांजलि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा-आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत के द्वारा राष्ट्र को एकता और नैतिकता का संदेश प्रदान किया। उन्होंने 'पहले इन्सान-इन्सान, फिर हिन्दु या मुसलमान' का नारा दिया था। मुख्यमंत्री श्री जे.एच. पटेल ने कहा—आचार्य श्री तुलसी एक महान् संत थे। उन्होंने अणुव्रत का प्रचार कर मानवता की महान सेवा की। भगवान महावीर के अहिंसा संदेश को जन-जन में फैलाया। विधान परिषद् में सभापति श्री कल्मपकर ने श्रद्धांजलि प्रस्ताव प्रस्तुत किया। विधि और संसदीय विभाग के मंत्री श्री एम.सी.नाणच्चा ने अपने वक्तव्य में कहा—आचार्य श्री तुलसी अग्रगण्य समाज सुधारक थे। उन्होंने एकता, अखण्डता तथा धर्म निरपेक्षता के लिए महान कार्य किया। धर्म और समाज में

फैली अंधी रूढ़ियों को उन्होंने दूर किया। विपक्ष के नेता श्री एच.के.पटेल ने श्रद्धांजलि देते हुए कहा-सारे देश में शांति व सद्भाव बनाने में आचार्य श्री तुलसी की उल्लेखनीय भूमिका रही है। पंजाब में शान्ति बहाली और राजीव गांधी संत लोंगोवाल के बीच हुए समझौते में आचार्य श्री तुलसी की भूमिका की उन्होंने सराहना की।

भाजपा नेता डॉ. एम.आर.तंगा ने जैन संत आचार्य श्री तुलसी के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए कहा कि आचार्य श्री तुलसी केवल मानव के प्रति ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के प्रति भी प्यार, दया की भावना जगाने में कामयाब रहे। उनका प्रमुख उपदेश था—'इच्छाओं को कम करो, क्योंकि इच्छाओं की कोई सीमा नहीं होती।' इसका पालन करना हम सबके लिए आवश्यक है। प्रो. एजाजुद्दीन ने आचार्य श्री तुलसी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा—पिछले ३० सालों से मेरा आचार्य श्री तुलसी से संबंध रहा है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन प्रमुख पांच तत्त्वों वाला उनका संदेश सर्वथा अनुकरणीय है। दोनों सदनों के सदस्यों ने खड़े होकर बाद में मौन श्रद्धांजलि प्रकट की।

जब विधानसभा में श्रद्धांजलि सभा का कार्यक्रम हो गया तब सबके मन में खुशी की लहर उत्पन्न हो गई। दूर से कई व्यक्तियों ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए हार्दिक बधाई दी एवं इसे एक ऐतिहासिक और आश्चर्यजनक कार्य बताया। बेंगलोर के स्थानकवासी और मूर्तिपूजक श्रावकों ने भी प्रसन्नता प्रकट करते हुए इसे जैन समाज के लिए गौरव का विषय बताया।

उसी चातुर्मास में बेंगलोर के नए सभा भवन के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के प्रमुख नेता चंदनमलजी बैद का आना हुआ। उन्होंने कहा—कर्नाटक विधानसभा में श्रद्धांजलि प्रस्ताव का समाचार सुनकर हमें हमारी भूल का अहसास हुआ। हमने सोचा-राजस्थान आचार्य श्री तुलसी का प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा है। कर्नाटक से प्रेरणा लेकर हमने भूल का सुधार किया, राजस्थान विधानसभा में भी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।